धवला

कालानुगम

(पुस्तक ४ का अंश)

गुणस्थान-प्रकरण

अनुवादक :
पण्डित फूलचन्दजी सिद्धान्त शास्त्री, वाराणसी

सम्पादक :
ब्र. यशपाल जैन, एम.ए., जयपुर

प्रकाशक :
पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट
ए-४, बापूनगर, जयपुर (राजस्थान) ३०२०१५
फोन : (०१४१) २७०५५८१, २७०७४५८
फैक्स : २७०४१२७, E-mail : ptstjaipur@yahoo.com

प्रथम संस्करण : २,०००
१ जनवरी २०१४

मूल्य : ७ रुपये

टाइप सैटिंग : **त्रिमूर्ति कम्प्यूटर्स** ए-४, बापूनगर, जयपुर

मुद्रक : **श्री प्रिन्टर्स** मालवीयनगर, जयपुर

कहाँ/क्या?

विषय	पृष्ठ संख्या	विषय	पृष्ठ संख्या
प्रकाशकीय	३	सूत्र १९,२०, २१	४२-४३
सम्पादकीय	४	प्रमत्ताप्रमत्त गुणस्थान	
षट्खण्डागम सूत्र-१	५-१४	सूत्र २२,२३,२४,२५	४३-४५
सूत्र २,३,४,	१५-३०	चारों उपशमक	
मिथ्यात्व गुणस्थान		सूत्र २६,२७,२८,२९	४६-४७
सूत्र ५,६,७,८	३१-३३	चारों क्षपक, अयोग	
सासादन गुणस्थान		केवली गुणस्थान	
सूत्र ९,१०,११,१२	३४-३६	सूत्र ३०,३१,३२	४७-४८
सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान		सयोगकेवली गुणस्थान	
सूत्र १३,१४,१५	३७-३९	नक्शों में गुणस्थान	४९-६२
अविरत सम्यक्त्व गुणस्थान		गुणस्थानों का काल	६३-६४
सूत्र १६,१७,१८	४०-४१		
देशविरत गुणस्थान			

कीमत कम करने वाले दातारों की सूची

१००१ रुपये प्रदान करने वाले : श्रीमती सेठानी चंन्द्रकान्ता देवी।
१००० रुपये प्रदान करने वाले : डॉ. अनिल जैन।
६०० रुपये प्रदान करने वाले : श्री महेश जैन।
५०१ रुपये प्रदान करने वाले : श्रीमती डॉ. ज्योति बाला, उमेश रागिनी जैन।
५०० रुपये प्रदान करने वाले : श्री पवन जैन, श्री एम.के. जैन, श्री आर.के. जैन, श्रीमती कमलीबाई दिवाकर, श्री इंजी. संतोष शर्मिला जैन, कु. मुक्ति, दृशि सिंघई, श्री अनिल कीर्ति जैन, डॉ. एच.वी. जैन सरिता जैन।
२५१ रुपये प्रदान करने वाले : श्री शिखरचन्द जैन, श्री आशीष जैन, श्रीमती नीता जैन, श्रीमती कुसुमलता डॉ. के.सी. भारिल्ल, श्रीमती गुणमाला जैन, श्रीमती मीना जैन गोंदिया, श्रीमती निशा पटेल, श्रीमती प्रभा जैन, श्रीमती शशि बाला जैन, श्रीमती सुभद्रा जैन, सम्यकतरंग महिला मंडल, श्री महेन्द्र जैन, श्री इंजी. मुकेश जैन।
२५० रुपये प्रदान करने वाले : श्रीमती ललिता जैन, कु. आयुषी आज्ञा जैन, श्री केवलचन्द शशि बैसाखिया, श्री आलोक सुषमा जैन, श्री सुशील कौशल, श्रीमती उर्मिला जैन, श्रीमती कविता जैन, श्री दिनेश किरण जैन, श्री हुकमचन्द विकासकुमार जैन।
१५० रुपये प्रदान करने वाले : श्रीमती कीर्तिकी माताजी।
१२५ रुपये प्रदान करने वाले : श्री प्रभात अनीता पटेल, श्री अभय उमा जैन एड.। **१०० रुपये प्रदान करने वाले** : श्रीमती नन्नूमल प्रमोद जैन।
सभी दातार सिवनी (म.प्र.) निवासी हैं।

कुल योग : १३,६१६/-

प्रकाशकीय

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के माध्यम से ब्र. यशपालजी द्वारा सम्पादित गुणस्थान विषय पर अनेक कृतियों का प्रकाशन समय-समय पर किया गया है। अब उनकी इसी विषय पर नवीनतम् कृति 'गुणस्थान-प्रकरण' प्रकाशित की जा रही है, जो आपके हाथों में है।

पूर्व में प्रकाशित **गुणस्थान-प्रवेशिका, चौदह गुणस्थान, समयसार-नाटक गर्भित गुणस्थान** तथा **गुणस्थान-विवेचन** जैसी महत्वपूर्ण कृतियाँ प्रकाशित की गई हैं; जिनका समाज ने समुचित समादर किया है।

इस गुणस्थान प्रकरण की विषय-वस्तु इसके नाम से ही ज्ञात हो जाती है। इसकी उपयोगिता के संबंध में ब्र. यशपालजी द्वारा लिखित सम्पादकीय दृष्टव्य है। प्रातःस्मरणीय आचार्य पुष्पदन्त और आचार्य भूतबलि द्वारा रचित षट्खण्डागम महान ग्रंथ, जिसकी धवला टीका आचार्य वीरसेनजी कृत है इस पुस्तक का हार्द है। उक्त ग्रन्थ के अनुवादक प्रकाण्ड जैन मनीषी पण्डित फूलचन्दजी सिद्धान्त शास्त्री हैं। चूँकि ब्र. यशपालजी का गुणस्थान प्रिय विषय रहा है और वे समय-समय पर शिविरों में कक्षाओं के माध्यम से जिज्ञासु पिपासुओं को गुणस्थान विषय का यथाशक्य ज्ञान कराते रहे हैं तथा वे इस विषय के निष्णात विद्वान हैं। उन्होंने इस पुस्तक का सम्पादन कर महती कार्य किया है। उनके द्वारा की गई जिनवाणी की महनीय सेवा के लिए ट्रस्ट उनका आभारी है।

इस पुस्तक की प्रकाशन व्यवस्था में साहित्य प्रकाशन एवं प्रचार विभाग के प्रभारी श्री अखिल बंसल का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है एवं इस पुस्तक का कंपोजिंग का कार्य श्री कैलाशचन्दजी शर्मा ने किया है, अत: वे दोनों बधाई के पात्र हैं। पुस्तक आप सभी आत्मार्थियों को कल्याणकारी हो ह्न इसी भावना के साथ।

– डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल
महामंत्री
पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर

संपादकीय

धवला पुस्तक ४ के गुणस्थान प्रकरण में मैंने अपनी ओर से नया कुछ भी नहीं किया; तथापि संपादन के निमित्त से जो कुछ बन पाया उसका ज्ञान कराना चाहता हूँ। श्री टोडरमल दि. जैन महाविद्यालय में गुणस्थान का विषय पढ़ाने का सहज ही सुअवसर मिला है। इसलिए कहीं भी गुणस्थान का विषय दिखे तो उसे बारीकी से देखने-पढ़ने का भाव होता है। धवला पुस्तक ४ में गुणस्थान का विषय आया है, यह जानने को मिला। उसे अनेक बार पढ़ा। इसमें गुणस्थान के संबंध में अनेक नये-नये प्रमेय पढ़ने को मिले। उनका लाभ सामान्य पाठकों को भी हो, यह भावना मन में उत्पन्न हुई। अतः जो धवला पुस्तक ४ में हिन्दी भाषा में आया है, उसे ही छोटे-छोटे परिच्छेद बनाकर दिया है।

पाठकों से निवेदन है कि प्रारंभ में विषय कुछ जटिल तथा सूक्ष्म आया है; तथापि बाद में अनेक विषय सुलभरूप से भी प्राप्त होते हैं। अतः पाठक धैर्य से पढ़ें।

आचार्य पुष्पदन्त तथा आचार्य भूतबलि रचित षट्खंडागम के मात्र ३२ सूत्र है और उन सूत्रों की आचार्य वीरसेन द्वारा लिखित धवला टीका भी है। हिन्दी अनुवाद पण्डित श्री फूलचन्दजी का है। साथ ही उनका भावार्थ भी दिया है।

बीच-बीच में हैडिंग तो मैंने अपनी ओर से दिये हैं। चौदह गुणस्थानों का विभाजन भी मैंने अपनी ओर से किया है। गुणस्थान में आगमन तथा गमन शब्दों का प्रयोग भी मैंने अपनी ओर से जोड़ा है। यहाँ मूल ग्रन्थ में गुणस्थान में आगमन का विषय प्रथम दिया है और गमन का विषय को बाद में रखा है।

धवला का विषय समाप्त होने के बाद मैंने अपनी ओर से १४ ही गुणस्थानों के गमनागमन को नक्शों से समझाने का प्रयास किया है। वहाँ गोम्मटसार जीवकाण्ड के विभाग का विशेष उपयोगी अंश साथ में जोड़ दिया है। तदनंतर गुणस्थानों के काल का भी ज्ञान कराया है।

सम्पादन में श्री गोमटेश चौगुले, शास्त्री का भी सहयोग मिला है। कम्पोज करने का उसमें भी विशेष रूप से नक्शा बनाने का कष्टसाध्य कार्य श्री कैलाशचन्दजी शर्मा ने किया है। सिवनी नगरनिवासी साधर्मियों ने कीमत कम करने के लिए आर्थिक सहयोग दिया है। साथ ही कवर पेज तथा छपाई का कार्य प्रकाशन विभाग के प्रभारी श्री अखिलजी बंसल ने ही पूर्ण मनोयोग से किया है; उन सबको धन्यवाद।

– ब्र. यशपाल जैन

ॐ

आचार्य श्रीपुष्पदन्त-भूतबलि-प्रणितः

षट्खंडागमः

आचार्य श्रीवीरसेन-विरचित धवला टीका समन्वितः

अनुवादक – पण्डित श्री फूलचन्दजी सिद्धान्तशास्त्री, वाराणसी

धवला

कालानुगम

(पुस्तक ४ का अंश)

गुणस्थान-प्रकरण

मंगलाचरण

कम्मकलंकुत्तिण्णं विबुद्धसव्वत्थमुत्त वत्थमणं।
णमिऊण उसहसेणं कालणिओगं भणिस्सामो।।

अर्थ – कर्मरूप कलंक से उत्तीर्ण, सर्व अर्थों के जाननेवाले और अस्त रहित अर्थात् सदा उदित, ऐसे वृषभसेन गणधर को नमस्कार करके अब **कालानुयोगद्वार** को कहते हैं।

सूत्र – कालानुगम से दो प्रकार का निर्देश है, ओघनिर्देश और आदेश-निर्देश।।१।।

नामकाल, स्थापनाकाल, द्रव्यकाल और भावकाल, इसप्रकार से काल चार प्रकार का है। उनमें से 'काल' इसप्रकार का शब्द **नामकाल** कहलाता है।

१. शंका – शब्द अपने को कैसे स्वीकार कराता है?

समाधान – यह कोई दोष नहीं है; क्योंकि, शब्द के स्व-परप्रकाशात्मक प्रमाण के प्रतिपादक शब्द पाये जाते हैं।

'वह यही है' इसप्रकार से अन्य वस्तु में बुद्धि के द्वारा अन्य का आरोपण करना स्थापना है।

वह स्थापना सद्भाव और असद्भाव के भेद से दो प्रकार की है।

अनुकरण करनेवाली वस्तु में अनुकरण करनेवाले अन्य पदार्थ का बुद्धि के द्वारा समारोप करना **सद्भावस्थापना** है।

उससे भिन्न या विपरीत **असद्भावस्थापना** होती है।

उनमें से पल्लवित, अंकुरित, कलित, करलित, पुष्पित, मुकुलित तथा सुन्दर कोयल के कलकल आलाप से परिपूर्ण वनखण्ड से उद्योतित, चित्रलिखित वसन्तकाल को **सद्भावस्थापनाकाल निक्षेप** कहते हैं।

गैरुक, मट्टी, ठीकरा इत्यादिक में 'यह वसंत है' इसप्रकार बुद्धि के बल से स्थापना करने को **असद्भावस्थापनाकाल** कहते हैं।

आगम और नोआगम के भेद से द्रव्यकाल दो प्रकार का है। कालषियक प्राभृत का ज्ञायक; किन्तु वर्तमान में उसके उपयोग से रहित जीव **आगमद्रव्यकाल** है।

ज्ञायकशरीर, भव्य और तद्व्यतिरिक्त के भेद से **नोआगमद्रव्यकाल** तीन प्रकार है।

उनमें ज्ञायकशरीर नोआगमद्रव्यकाल १. भावी, २. वर्तमान और ३. त्यक्त के भेद से तीन प्रकार का है।

वह भी पहले बहुत बार प्ररूपण किया जा चुका है, इसलिए यहाँ पर पुनः नहीं कहते हैं।

भविष्यकाल में जो जीव कालप्राभृत का ज्ञायक होगा, उसे **भावीनोआगमद्रव्यकाल** कहते हैं।

जो दो प्रकार के गंध, पाँच प्रकार के रस, आठ प्रकार के स्पर्श और पाँच प्रकार के वर्ण से रहित है, कुम्भकार के चक्र की अधस्तन शिला या कील के समान है, वर्तना ही जिसका लक्षण है और जो

लोकाकाश-प्रमाण है, ऐसे पदार्थ को **तद्व्यतिरिक्तनोआगमद्रव्यकाल** कहते हैं।

पंचास्तिकायप्राभृत में कहा भी है –

गाथार्थ – *'काल' इसप्रकार का यह नाम सत्तारूप निश्चयकाल का प्ररूपक है; और वह निश्चयकालद्रव्य अविनाशी होता है। दूसरा व्यवहारकाल उत्पन्न और प्रध्वंस होनेवाला है; तथा आवली, पल्य, सागर आदि के रूप से दीर्घकाल तक स्थायी है।।१।।*

*व्यवहारकाल पुद्गलों के परिणमन से उत्पन्न होता है और पुद्गलादिका परिणमन द्रव्यकाल के द्वारा होता है, दोनों का ऐसा स्वभाव है। यह **व्यवहारकाल क्षणभंगुर** है; परन्तु **निश्चयकाल नियत** अर्थात् अविनाशी है।।२।।*

वह कालनामक पदार्थ न तो स्वयं परिणमित होता है और न अन्य को अन्यरूप से परिणमाता है। किन्तु स्वतः नाना प्रकार के परिणामों को प्राप्त होनेवाले पदार्थों का काल नियम से स्वयं हेतु होता है।।३।।

लोकाकाश के एक-एक प्रदेश पर रत्नों की राशि के समान जो एक-एक रूप से स्थित हैं, वे कालाणु जानना चाहिए।।४।।

जीवसमास में भी कहा है –

गाथार्थ – *जिनवर के द्वारा उपदिष्ट छह द्रव्य, अथवा पंच अस्तिकाय, अथवा नव पदार्थों का आज्ञा से और अधिगम से श्रद्धान करना, सम्यक्त्व है।।५।।*

उसीप्रकार से आचारांग में भी कहा है –

गाथार्थ – *पंच अस्तिकाय, षट्जीवनिकाय, कालद्रव्य तथा अन्य जो पदार्थ केवल आज्ञा अर्थात् जिनेन्द्र के उपदेश से ही ग्राह्य हैं, उन्हें यह सम्यक्त्वी जीव आज्ञाविचय धर्मध्यान से संचय करता है, अर्थात् श्रद्धान करता है।।६।।*

तथा गृद्धपिच्छाचार्य द्वारा प्रकाशित तत्त्वार्थसूत्र में भी 'वर्तना, परिणाम, क्रिया, परत्व और अपरत्व, ये कालद्रव्य के उपकार हैं' इस प्रकार से द्रव्यकाल प्ररूपित है।

जीवस्थान आदि ग्रन्थों में द्रव्यकाल नहीं कहा गया है, इसलिए उसका अभाव नहीं कह सकते हैं; क्योंकि, यहाँ जीवस्थान में छह द्रव्यों के प्रतिपादन का अधिकार नहीं है। इसलिए 'द्रव्यकाल है' ऐसा स्वीकार करना चाहिए।

अथवा, जीव और अजीव आदि के योग से बने हुए आठ भंगरूप द्रव्य को **नोआगमद्रव्यकाल** कहते हैं।

विशेषार्थ – जीव और अजीवद्रव्य के संयोग से काल के आठ भंग इसप्रकार होते हैं –

१. एक जीवकाल २. एक अजीवकाल
३. अनेक जीवकाल ४. अनेक अजीवकाल
५. एक जीव एक अजीवकाल ६. अनेक जीव एक अजीवकाल
७. एक जीव अनेक अजीवकाल ८ और अनेक जीव अनेक अजीवकाल।

(देखो मंगलसम्बन्धी आठ आधार, सत्प्र. १, पृ. १९)

काल के निमित्त से होनेवाले एक जीवसम्बन्धी परिवर्तन को एक **जीवकाल** कहते हैं। इसप्रकार से आठों भंगों का स्वरूप जान लेना चाहिए।

टीका – आगम और नोआगम के भेद से भावकाल दो प्रकार का है। काल–विषयक प्राभृत का ज्ञायक और वर्तमान में उपयुक्त जीव **आगमभावकाल** है। द्रव्यकाल से जनित परिणाम या परिणमन **नोआगमभावकाल** कहा जाता है।

२. शंका – पुद्गल आदि द्रव्यों के परिणाम के 'काल' यह संज्ञा कैसे संभव है?

समाधान – यह कोई दोष नहीं; क्योंकि, कार्य में कारण के उपाचार के निबंधन से पुद्गलादि द्रव्यों के परिणाम के भी 'काल' संज्ञा का व्यवहार हो सकता है।

पंचास्तिकायप्राभृत में व्यवहारकाल का अस्तित्व कहा भी गया है –

गाथार्थ – *सत्तास्वरूप स्वभाववाले जीवों के, तथैव पुद्गलों के और 'च' शब्द से धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य और आकाशद्रव्य के परिवर्तन में जो निमित्तकारण हो, वह नियम से* ***कालद्रव्य*** *कहा गया है।।७।।*

समय, निमिष, काष्ठा, कला, नाली तथा दिन और रात्रि, मास, ऋतु, अयन और संवत्सर इत्यादि काल परायत्त है; अर्थात् जीव, पुद्गल एवं धर्मादिक द्रव्यों के परिवर्तनाधीन है।।८।।

वर्तनारहित चिर अथवा क्षिप्र की, अर्थात् परत्व और अपरत्व की, कोई सत्ता नहीं है। वह वर्तना भी पुद्गलद्रव्य के बिना नहीं होती है, इसलिए कालद्रव्य पुद्गल के निमित्त से हुआ कहा जाता है।।९।।

३. शंका – ऊपर वर्णित अनेक प्रकार के कालों में से यहाँ पर किस काल से प्रयोजन है?

समाधान – नोआगमभावकाल से प्रयोजन है।

वह काल; समय, आवली, क्षण, लव, मुहूर्त, दिवस, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, संवत्सर, युग, पूर्व, पर्व, पल्योपम, सागरोपम आदि रूप है।

४. शंका – तो फिर इसके 'काल' ऐसा व्यपदेश कैसे हुआ?

समाधान – नहीं; क्योंकि, **जिसके द्वारा कर्म, भव, काय और आयुकी स्थितियाँ कल्पित या संख्यात की जाती हैं अर्थात् कही जाती हैं, उसे काल कहते हैं'।**

इसप्रकार की काल शब्द की व्युत्पत्ति है। **काल, समय और अद्धा,** ये सब एकार्थवाची नाम हैं।

समय आदि का अर्थ कहते हैं।

एक परमाणु का दूसरे परमाणु के व्यतिक्रमण करने में जितना काल लगता है, उसे **समय** कहते हैं।

अर्थात्, चौदह राजु आकाश प्रदेशों के अतिक्रमण मात्र काल से जो चौदह राजू अतिक्रमण करने में समर्थ परमाणु है, उसके एक परमाणु अतिक्रमण करने के काल का नाम **समय** है।

असंख्यात समयों को ग्रहण करके एक **आवली** होती है।

तत्प्रायोग्य संख्यात आवलियों से एक **उश्वास–निःश्वास** निष्पन्न होता है।

सात उश्वासों से एक **स्तोक** संज्ञिक काल निष्पन्न होता है।

सात स्तोकों से एक **लव** नाम का काल निष्पन्न होता है।

साढ़े अड़तीस लवों से एक **नाली** नाम का काल निष्पन्न होता है।

दो नालिकाओं से एक **मुहूर्त** होता है।

गाथार्थ – *उन तीन हजार सात सौ तेहत्तर (३७७३) उच्छ्वासों का एक **मुहूर्त** कहा जाता है।।१०।।*

विद्वानों ने एक मुहूर्त में पाँच हजार एक सौ दश (५११०) निमेष गिने हैं।।११।।

*तीस मुहूर्तों का एक **दिन अर्थात् अहोरात्र** होता है।*

मुहूर्तों के नाम इस प्रकार हैं –

*१. रौद्र, २. श्वेत, ३. मैत्र, ४. सारभट, ५. दैत्य, ६. वैरोचन, ७. वैश्वदेव, ८. अभिजित, ९. रोहण, १०. बल, ११. विजय, १२. नैऋत्य, १३. वारुण, १४. अर्यमन् और १५ भाग्य – **ये पन्द्रह मुहूर्त दिन में होते हैं**।।१२–१३।।*

*१. सावित्र, २. धुर्य, ३. दात्रक, ४ यम, ५ वायु, ६. हुताशन, ७. भानु, ८. वैजयन्त, ९. सिद्धार्थ, १०. सिद्धसेन, ११. विक्षोभ, १२. योग्य, १३. पुष्पदन्त, १४. सुगन्धर्व और १५ अरुण। **ये पन्द्रह मुहूर्त रात्रि में होते हैं**, ऐसा माना गया है।।१४–१५।।*

रात्रि और दिन का समय तथा मुहूर्त समान कहे गये हैं। हाँ, कभी दिन को छह मुहूर्त जाते हैं और कभी रात्रि को छह मुहूर्त जाते हैं।।१६।।

विशेषार्थ – समान दिन और रात्रि की अपेक्षा तो पन्द्रह मुहूर्त का **दिन** और इतने ही मुहूर्तों की एक **रात्रि** होती है। किन्तु सूर्य के उत्तरायणकाल में अठारह मुहूर्त का **दिन** और बारह मुहूर्त की **रात्रि** हो जाती है। तथा सूर्य के दक्षिणायनकाल में बारह मुहूर्त का दिन और अठारह मुहूर्त की रात्रि हो जाती है। इसलिए श्लोक में कहा है कि **छह**

मुहूर्त कभी दिन को और कभी रात्रि को प्राप्त होते हैं।

अर्थात् दिन के तीन और रात्रि के तीन, इसप्रकार छह मुहूर्त कभी दिन से रात्रि में और कभी रात्रि से दिन की गिनती में आते जाते रहते हैं।

टीका – पन्द्रह दिनों का एक पक्ष होता है।

दिनों के नाम इसप्रकार है–

गाथार्थ – *नंदा, भद्रा, जया, रिक्ता और पूर्णा, इसप्रकार क्रम से पाँच तिथियाँ होती हैं। इनके देवता क्रम से चन्द्र, सूर्य, इन्द्र, आकाश और धर्म होते हैं।।१७।।*

विशेषार्थ – नन्दा आदि तिथियों के नाम प्रतिपदा से प्रारंभ करना चाहिए, अर्थात् प्रतिपदा का नाम नन्दातिथि है। द्वितीय का नाम भद्रातिथि है। तृतीया का नाम जयातिथि है। चतुर्थी का नाम रिक्तातिथि है। पंचमी का नाम पूर्णातिथि है। पुनः षष्ठी का नाम नन्दातिथि है, इत्यादि।

इसप्रकार से प्रतिपदा, षष्ठी और एकादशी का नाम **नन्दातिथि** है।

द्वितीया सप्तमी और द्वादशी का नाम **भद्रातिथि** है।

तृतीया, अष्टमी और त्रयोदशी का नाम **जयातिथि** है।

चतुर्थी, नवमी और चतुर्दशी का नाम **रिक्तातिथि** है।

पंचमी, दशमी तथा पूर्णिमा का नाम **पूर्णातिथि** है।

इसी क्रम से इनके देवता भी समझ लेना चाहिए।

टीका – दो पक्षों का एक **मास** होता है।

वे मास **श्रावण** आदिक के नाम से प्रसिद्ध हैं।

बारह मास का **एक वर्ष** होता है।

पाँच वर्षों का **एक युग** होता है।

इसप्रकार ऊपर ऊपर भी कल्प उत्पन्न होने तक कहते जाना चाहिए।

यह सब **काल** कहलाता है।

५. शंका – यह काल किसका है, अर्थात् काल का स्वामी कौन है?

समाधान – जीव और पुद्गलों का, अर्थात् ये दोनों काल के

स्वामी हैं, क्योंकि, काल तत्परिणामात्मक है।

अथवा, परिवर्तन या प्रदक्षिणा लक्षणवाले इस सूर्यमण्डल के उदय और अस्त होने से दिन और रात्रि आदि की उत्पत्ति होती है।

६. शंका – काल किससे किया जाता है, अर्थात् काल का साधन क्या है?

समाधान – परमार्थकाल से काल अर्थात् व्यवहारकाल निष्पन्न होता है।

७. शंका – काल कहाँ पर है, अर्थात् काल का अधिकरण क्या है?

समाधान – त्रिकालगोचर अनन्त पर्यायों से परिपूरित एकमात्र मानुषक्षेत्रसम्बन्धी सूर्यमण्डल में ही काल है।

अर्थात् **काल का आधार मनुष्यक्षेत्रसम्बन्धी सूर्यमण्डल है।**

८. शंका – यदि एकमात्र मनुष्यक्षेत्र के सूर्यमण्डल में ही काल अवस्थित है, तो सर्व पुद्गलों से अनन्तगुणे तथा प्रदीप के समान स्व-परप्रकाशन के कारणरूप और यवराशि के समान समयरूप से अवस्थित उस काल के द्वारा छह द्रव्यों के परिणाम कैसे प्रकाशित किये जाते हैं?

समाधान – यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, मापे जानेवाले द्रव्यों से पृथग्भूत मागध (देशीय) प्रस्थ के समान मापने में कोई विरोध नहीं है। न इसमें कोई अनवस्था दोष ही आता है; क्योंकि, प्रदीप के साथ व्यभिचार आता है।

अर्थात् जैसे दीपक, घट, पट आदि अन्य पदार्थों का प्रकाशक होने पर भी स्वयं अपने आपका प्रकाशक होता है, उसे प्रकाशित करने के लिए अन्य दीपक की आवश्यकता नहीं हुआ करती है।

इसीप्रकार से कालद्रव्य भी अन्य जीव, पुद्गल आदि द्रव्यों के परिवर्तन का निमित्तकारण होता हुआ भी अपने आपका परिवर्तन स्वयं ही करता है, उसके लिए किसी अन्य द्रव्य की आवश्यकता नहीं पड़ती है। इसीलिए अनवस्था दोष भी नहीं आता है।

९. शंका – देवलोक में तो दिन-रात्रि रूप का काल का अभाव

है, फिर वहाँ पर काल का व्यवहार कैसे होता है?

समाधान – नहीं; क्योंकि, **यहाँ के काल से देवलोक में काल का व्यवहार होता है।**

१०. शंका – यदि जीव और पुद्गलों का परिणाम ही काल है, तो सभी जीव और पुद्गलों में काल को संस्थित होना चाहिए। तब ऐसी दशा में 'मनुष्य क्षेत्र के एक सूर्यमंडल में ही काल स्थित है' यह बात घटित नहीं होती है?

समाधान – यह कोई दोष नहीं है; क्योंकि, उक्त कथन निरवद्य (निर्दोष) है। किन्तु लोक में या शास्त्र में उसप्रकार से संव्यवहार नहीं है, पर अनादिनिधनस्वरूप से सूर्यमण्डल की क्रिया-परिणामों में ही काल का संव्यवहार प्रवृत्त है। इसलिए इसका ही ग्रहण करना चाहिए।

११. शंका – काल कितने समय तक रहता है?

समाधान – काल अनादि और अपर्यवसित है।

अर्थात् **काल का न आदि है, न अन्त है।**

१२. शंका – काल का परिणमन करनेवाला काल क्या उससे पृथग्भूत है, अथवा अनन्य (अपृथग्भूत)? पृथग्भूत तो कहा नहीं जा सकता है, अन्यथा अनवस्थादोष का प्रसंग प्राप्त होगा। और न अनन्य (अपृथग्भूत) ही; क्योंकि, काल के काल का अभाव-प्रसंग आता है। इसलिए काल का काल से निर्देश घटित नहीं होता है?

समाधान – यह कोई दोष नहीं। इसका कारण यह है कि पृथक् पक्ष में कहा गया दोष तो संभव है नहीं; क्योंकि, हम काल के काल को काल से भिन्न मानते ही नहीं है।

और न अनन्य या अभिन्न पक्ष में दिया गया दोष ही प्राप्त होता है; क्योंकि, वह तो हमें इष्ट ही है, (और इष्ट वस्तु उसी के लिए दोषदायी नहीं हुआ करती है)।

तथा, काल का काल से निर्देश नहीं होता हो, ऐसी भी बात नहीं है; क्योंकि अन्य सूर्यमण्डल में स्थित कालद्वारा उससे पृथग्भूत सूर्यमण्डल

में स्थित काल का निर्देश पाया जाता है।

अथवा, जैसे घट का भाव, शिलापुत्रक का (पाषाणमूर्तिका) शरीर; इत्यादि लोकोक्तियों में एक या अभिन्न में भी भेद व्यवहार होता है, उसी प्रकार से यहाँ पर भी एक या अभिन्न काल में भी भेदरूप से व्यवहार बन जाता है।

१३. शंका – काल कितने प्रकार का होता है?

समाधान – १. सामान्य से **एक** प्रकार का काल होता है।

२. अतीत, अनागत और वर्तमान की अपेक्षा **तीन** प्रकार का होता है।

३. अथवा गुणस्थितिकाल, भवस्थितिकाल, कर्मस्थितिकाल, कालस्थितिकाल, उपपादकाल और भावस्थितिकाल इसप्रकार काल के **छह** भेद हैं।

४. अथवा काल अनेक प्रकार का है; क्योंकि परिणामों से पृथग्भूत काल का अभाव है, तथा परिणाम अनन्त पाये जाते हैं।

यथार्थ अवबोध को अनुगम कहते हैं, काल के अनुगम को कालानुगम कहते हैं। उस कालानुगम से निर्देश, कथन, प्रकाशन, अभिव्यक्तिजनन, ये सब एकार्थक नाम है।

वह निर्देश दो प्रकार का है, ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उक्त दोनों प्रकार के निर्देशों में से ओघनिर्देश-द्रव्यार्थिकनय का प्रतिपादन करनेवाला है; क्योंकि उसमें समस्त अर्थ संगृहीत है।

आदेशनिर्देश पर्यायार्थिकनय का प्रतिपादन करनेवाला है; क्योंकि, उसमें अर्थभेद का अवलंबन किया गया है।

१४. शंका – वृषभसेनादि गणधरदेवों ने दो प्रकार का निर्देश किसलिए किया है?

समाधान – यह कोई दोष नहीं; क्योंकि, द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक, इन दोनों नयों को अवलम्बन करके स्थित प्राणियों के अनुग्रह के लिए दो प्रकार के निर्देश का उपदेश किया है।

●

१

मिथ्यात्व गुणस्थान

सूत्र – ओघ से मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल होते हैं।।२।।

'जिसप्रकार से उद्देश्य होता है, उसीप्रकार से निर्देश किया जाता है'; यह बात जतलाने के लिए सूत्र में '**ओघ**' पद का निर्देश किया।

'**मिथ्यादृष्टि**' पद का निर्देश, शेष गुणस्थानों के प्रतिषेध के लिए है।

'**काल से**' अर्थात् काल की अपेक्षा जीवों के संभालने पर 'कितने काल तक होते हैं' इसप्रकार की यह पृच्छा '**यह सूत्र जिनप्रज्ञप्त है**' इस बात के बताने के लिए है।

जीवों के बहुत होने पर भी 'नाना जीव' इसप्रकार का यह एक वचन का निर्देश जातिनिबंधनक है, इसलिए कोई दोषोत्पादक नहीं है।

'**सर्वाद्धा**' यह पद कालविशिष्ट बहुत से जीवों का निर्देश करनेवाला है; क्योंकि, सर्व अद्धा अर्थात् काल जिन जीवों के होता है, इसप्रकार से 'व' समास अर्थात् बहुब्रीहि समास के वश से बाह्य अर्थ की प्रवृत्ति होती है।

अथवा '**सर्वाद्धा**' इस पद से काल का निर्देश जानना चाहिए; क्योंकि, मिथ्यादृष्टियों के कालत्व से अभिन्न परिणामी के परिणामों से कथंचित् अभेद का आश्रय करके मिथ्यादृष्टियों के कालत्व का कोई भेद नहीं है।

अर्थात् नाना जीवों की अपेक्षा मिथ्यादृष्टि जीवों का सर्वकाल व्युच्छेद नहीं होता है, यह कहा गया है।

सूत्र – एक जीव की अपेक्षा काल तीन प्रकार है, १. अनादि-अनन्त, २. अनादि सान्त और ३. सादि-सान्त।

इनमें जो सादि और सान्त काल है, उसका निर्देश इसप्रकार है – एक जीव की अपेक्षा मिथ्यादृष्टि जीवों का सादि-सान्त काल जघन्य से अन्तर्मुहूर्त है।।३।।

अभव्यसिद्धिक जीवों के मिथ्यात्व की अपेक्षा 'काल अनादि-अनन्त है' ऐसा कहा गया है; क्योंकि, **अभव्य के मिथ्यात्व का आदि, मध्य और अन्त नहीं होता है।**

भव्यसिद्धिक जीव के मिथ्यात्व का काल एक तो **अनादि और सान्त होता है,** जैसा कि वर्द्धनकुमार का मिथ्यात्वकाल।

तथा एक और प्रकार का भव्यसिद्धिक जीवों का मिथ्यात्वकाल हैं, जो कि सादि और सान्त होता है, जैसे कृष्ण आदि का मिथ्यात्व-काल। **उनमें से जो सादि और सान्त मिथ्यात्वकाल होता है, उसका यह निर्देश है।**

वह दो प्रकार का है, जघन्यकाल और उत्कृष्टकाल।

उनमें से जघन्यकाल की प्ररूपणा की जाती है, यह बतलाने के लिए 'जघन्य से' ऐसा पद कहा।

मुहूर्त के भीतर जो काल होता है, उसे अन्तर्मुहूर्तकाल कहते हैं।

इस पद से मिथ्यात्व के जघन्यकाल का निर्देश कहा गया है, जो कि इसप्रकार है -

मिथ्यात्व गुणस्थान में आगमन -

१. कोई सम्यग्मिथ्यादृष्टि अथवा २. असंयतसम्यग्दृष्टि अथवा ३. संयतासंयत, अथवा ४. प्रमत्त संयत जीव, **परिणामों के निमित्त से** मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ। सर्व जघन्य अन्तर्मुहूर्तकाल रह करके (रहता है)।

मिथ्यात्व गुणस्थान से गमन -

फिर भी १. सम्यग्मिथ्यात्व को अथवा २. असंयम के साथ सम्यक्त्व को अथवा ३. संयमासंयम को अथवा ४. अप्रमत्तभाव के साथ संयम को प्राप्त हुआ। इसप्रकार से प्राप्त होनेवाले जीव के **मिथ्यात्व का सर्वजघन्य काल होता है।**

१५. शंका - सासादनसम्यग्दृष्टि जीव मिथ्यात्व को क्यों नहीं प्राप्त कराया गया? अर्थात् सासादनसम्यग्दृष्टि को भी मिथ्यात्व गुणस्थान में पहुँचाकर उसका जघन्यकाल क्यों नहीं बतलाया?

समाधान - नहीं; क्योंकि, सासादनसम्यक्त्व से पीछे आनेवाले, अतितीव्र, संक्लेशवाले मिथ्यात्वरूपी तृष्णा से विडम्बित मिथ्यादृष्टि जीव के सर्व जघन्य काल से गुणान्तरसंक्रमण का अभाव है, अर्थात्

सासादन गुणस्थान से आया हुआ मिथ्यादृष्टि अति शीघ्र अन्य गुणस्थान को प्राप्त नहीं हो सकता।[१]

अब मिथ्यात्व के उत्कृष्ट काल को बतलाने के लिए उत्तरसूत्र कहते हैं -

सूत्र - एक जीव की अपेक्षा सादि-सान्त मिथ्यात्व का उत्कृष्ट काल कुछ कम अर्द्धपुद्गलपरिवर्तन है।।४।।

१६. शंका - अर्द्धपुद्गलपरिवर्तन किसे कहते हैं?

समाधान - इस अनादि संसार में भ्रमण करते हुए जीवों के १. द्रव्यपरिवर्तन २. क्षेत्रपरिवर्तन ३. कालपरिवर्तन ४. भवपरिवर्तन और ५. भावपरिवर्तन, इस प्रकार **पाँच** परिवर्तन होते रहते हैं।

इसमें से जो द्रव्यपरिवर्तन है, वह दो प्रकार का हैं -१. नोकर्म-पुद्गलपरिवर्तन और २. कर्मपुद्गलपरिवर्तन।

उनमें से पहले **नोकर्मपुद्गलपरिवर्तन को कहते हैं।** वह इस प्रकार है -

यद्यपि पुद्गलों के गमनागमन के प्रति कोई विरोध नहीं है, तो भी बुद्धि से (किसी विवक्षित पुद्गलपरमाणुपुंज को) आदि करके नोकर्मपुद्गलपरिवर्तन के कहने पर विवक्षित पुद्गलपरिवर्तन के भीतर सर्वपुद्गल राशि में से एक भी परमाणु नहीं भोगा है, ऐसा समझकर पुद्गल परिवर्तन के प्रथम समय में सर्व पुद्गलों की अगृहीत संज्ञा करना चाहिए।

अतीतकाल में भी सर्व जीवों के द्वारा सर्व पुद्गलों का अनन्तवाँ

१. तीसरे, चौथे, पाँचवें तथा छठवें गुणस्थान से मिथ्यात्व में आनेवाले जीव की अपेक्षा सासादन गुणस्थान से मिथ्यात्व में आनेवाला जीव, अधिक संक्लेश परिणामी होने से मिथ्यात्व को अल्पकाल में छोड़ नहीं सकता। देखो परिणामों की विचित्रता!

भाग, सर्वराशि से अनन्तगुणा और सर्व जीव राशि के उपरिम वर्ग से अनन्तगुणहीन प्रमाणवाला पुद्गलपुंज भोगकर छोड़ा गया है।

इसका कारण यह है कि अभव्यसिद्ध जीवों से अनन्तगुणे और सिद्धों के अनन्तवें भाग से गुणित अतीतकालप्रमाण सर्व जीव राशि के समान भोग करके छोड़े गये पुद्गलों का परिणाम पाया जाता है।

१७. शंका – यदि जीव ने आज तक भी समस्त पुद्गल भोगकर नहीं छोड़े हैं, तो –

गाथार्थ – *इस पुद्गलपरिवर्तनरूप संसार में समस्त पुद्गल इस जीव ने एक-एक करके पुनः पुनः अनन्त बार भोग करके छोड़े हैं ।।१८ ।।*

इस सूत्रगाथा के साथ विरोध क्यों नहीं होगा?

समाधान – उक्त सूत्रगाथा के साथ विरोध प्राप्त नहीं होता है; क्योंकि, गाथा में स्थित **सर्व शब्द की प्रवृत्ति सर्व के एक भाग में की गई है।**

तथा **सर्व के अर्थ में प्रवर्तित होनेवाले शब्द की एकदेश में प्रवृत्ति होना असिद्ध भी नहीं है; क्योंकि, ग्राम जल गया, पद (जनपद) जल गया – इत्यादिक वाक्यों में उक्त शब्द ग्राम और पदों के एक देश में प्रवृत्त हुए भी पाये जाते हैं।**

अतएव पुद्गलपरिवर्तन के आदि समय में औदारिक आदि तीन शरीरों में से किसी एक शरीर के निष्पादन करने के लिए जीव अभव्य-सिद्धों से अनन्तगुणें और सिद्धों के अनन्तवें भागमात्र अगृहीत संज्ञावाले पुद्गलों को ही ग्रहण करता है। उन पुद्गलों को ग्रहण करता हुआ भी अपने आश्रित क्षेत्र में स्थित पुद्गलों को ही ग्रहण करता है; किन्तु पृथक् क्षेत्र में स्थित पुद्गलों को नहीं ग्रहण करता है। कहा भी है –

गाथार्थ – *यह जीव एक क्षेत्र में अवगाढ़रूप से स्थित और कर्मरूप परिणमन के योग्य पुद्गल परमाणुओं को यथोक्त (आगमोक्त मिथ्यात्व आदि) हेतुओं से सर्व प्रदेशों के द्वारा बांधता है। वे पुद्गलपरमाणु सादि भी होते हैं, अनादि भी होते हैं और उभयरूप भी होते हैं ।।१९ ।।*

द्वितीय समय में भी विवक्षित पुद्गलपरिवर्तन के भीतर अगृहीत पुद्गलों को ही ग्रहण करता है। इसप्रकार उत्कृष्ट काल की अपेक्षा अनन्त काल तक अगृहीत पुद्गलों को ही ग्रहण करता है। किन्तु जघन्य काल की अपेक्षा दो समयों में ही अगृहीत पुद्गलों को ग्रहण करता है; क्योंकि, प्रथम समय में ग्रहण किये गये पुद्गलों की द्वितीय समय में निर्जरा करके अकर्मभाव (कर्मरहित अवस्था) को प्राप्त हुए वे ही पुद्गल पुनः तृतीय समय में उसी ही जीव में नोकर्म पर्याय से परिणत हुए पाये जाते हैं।

१८. शंका – प्रथम समय में गृहीत पुद्गलपुंज द्वितीय समय में निर्जीर्ण हो, अकर्मरूप अवस्था को धारण कर, पुनः तृतीय समय में उसी ही जीव में नोकर्मपर्याय से परिणत हो जाता है, यह कैसे जाना?

समाधान – क्योंकि, आबाधाकाल के बिना ही नोकर्म के उदय आदि के निषेकों का उपदेश पाया जाता है।

यह पुद्गलपरिवर्तनकाल तीन प्रकार का होता है – १. अगृहीत-ग्रहणकाल २. गृहीतग्रहणकाल और ३. मिश्रग्रहणकाल।

१. विवक्षित पुद्गलपरिवर्तन के भीतर अगृहीत पुद्गलों के ग्रहण करने के काल का नाम **अगृहीतग्रहणकाल** हैं।

२. विवक्षित पुद्गलपरिवर्तन के भीतर गृहीत पुद्गलों के ही ग्रहण करने के काल का नाम **गृहीतग्रहणकाल** हैं।

३. तथा विवक्षित पुद्गलपरिवर्तन के भीतर गृहीत और अगृहीत इन दोनों प्रकार के पुद्गलों के अक्रम से अर्थात् एक साथ ग्रहण करने के काल का नाम **मिश्रग्रहणकाल** है।

इसतरह उक्त तीनों प्रकारों से जीव का पुद्गलपरिवर्तनकाल व्यतीत होता है।

विशेषार्थ – जिन पुद्गलपरमाणुओं के समुदायरूप समयप्रबद्ध में

केवल पहले ग्रहण किये हुए परमाणु ही हों, उस पुद्गलपुंज को **गृहीत** कहते हैं।

जिस समयप्रबद्ध में ऐसे परमाणु हों कि जिनका जीव ने पहिले कभी ग्रहण नहीं किया हो; उस पुद्गलपुंज को **अगृहीत** कहते हैं।

जिस समयप्रबद्ध में दोनों प्रकार के परमाणु हो, उस पुद्गलपुंज को **मिश्र** कहते हैं।

टीका – अब यहाँ पर उक्त तीनों प्रकार के कालों के परिवर्तन का क्रम कहते हैं।

वह इस प्रकार है – पुद्गलपरिवर्तन के आदि समय से लेकर अनन्त काल तक अगृहीतग्रहण का काल होता है; क्योंकि, उसमें शेष दो प्रकार के कालों का अभाव है।

पुनः अगृहीतग्रहण काल के अन्त में एक बार मिश्रपुद्गलपुंज के ग्रहण करने का काल आता है। फिर भी द्वितीय बार अगृहीतग्रहण काल के द्वारा अनन्त काल जाकर एक बार मिश्रपुद्गलपुंज के ग्रहण करने का काल आता है।

इसी प्रकार तृतीय बार भी अगृहीतग्रहण काल के द्वारा अनन्त काल जाकर एक बार मिश्रग्रहणकालरूप से परिणमन होता है। इसप्रकार से मिश्रग्रहण काल की भी शलाकाएँ अनन्त हो जाती हैं। पुनः अनन्त काल अगृहीतग्रहण काल के द्वारा बिता कर एक बार गृहीतग्रहणकालरूप से परिणमन होता है। इस क्रम से अनन्त काल व्यतीत होता हुआ तब तक चला जाता है जब तक कि गृहीतग्रहणकाल की शलाकाएँ भी अनन्तत्व को प्राप्त हो जाती है **(इसप्रकार प्रथम परिवर्तन बार व्यतीत हुआ)**

पुनः इसके बाद अनन्त काल मिश्रग्रहण काल की अपेक्षा बिताकर एक बार अगृहीतग्रहण काल परिणत होता है। इसप्रकार इन दोनों प्रकार के कालों से अनन्त काल बिताकर एक बार गृहीतग्रहण काल होता है।

इसतरह उक्त प्रकार से जीव का काल तब तक व्यतीत होता हुआ चला जाता है; जब तक कि यहाँ की गृहीतग्रहणकाल सम्बन्धी शलाकाएँ भी अनन्तता को प्राप्त हो जाती हैं। **इसप्रकार दो परिवर्तन बार व्यतीत हुई।**

पुनः अनन्त काल मिश्र ग्रहण काल के द्वारा बिताकर एक बार गृहीतग्रहण काल का परिणमन होता है। इसीप्रकार से गृहीतग्रहण काल की शलाकाएँ अनन्तता को प्राप्त हो जाती हैं।

तत्पश्चात् एक बार अगृहीतग्रहण-कालरूप से परिणमन होता है। पुनः इसप्रकार से भी अनन्तकाल तब तक व्यतीत होता है जब तक कि यहाँ पर भी अगृहीतगृहणकालसंबंधी शलाकाएँ अनन्तता को प्राप्त होती है, **यह तीसरा परिवर्तन है।**

अब चतुर्थ परिवर्तन को कहते हैं। वह इसप्रकार है – अनन्त काल गृहीतग्रहणकालसम्बन्धी बिताकर एक बार मिश्रग्रहण काल का परिवर्तन होता है। इसप्रकार इन दोनों प्रकार के कालों द्वारा अनन्त काल बिताता है जब तक कि यहाँ की मिश्रग्रहणकालसम्बन्धी शलाकाएँ अनन्तता को प्राप्त होती हैं।

इसके पश्चात् एक बार अगृहीतग्रहणकालरूप से परिणमित होता है। इसके पश्चात् फिर भी इसके आगे इस ही क्रम से पुद्गलपरिवर्तन के अन्तिम समय तक काल व्यतीत होता जाता है। **(इस चतुर्थ परिवर्तन के समाप्त हो जाने पर)**

नोकर्मपुद्गलपरिवर्तन के आदिम समय में जीव के द्वारा नोकर्मस्वरूप से जो पुद्गल ग्रहण किये थे, वे ही पुद्गल द्वितीयादि समयों में अकर्मभाव को प्राप्त होकर के जिस काल में वे ही शुद्ध पुद्गल आने लगते हैं; वह काल 'पुद्गलपरिवर्तन' इस नाम से कहा जाता है।

विशेषार्थ – परिवर्तन पाँच प्रकार का है – १. द्रव्यपरिवर्तन २. क्षेत्रपरिवर्तन ३. कालपरिवर्तन ४. भवपरिवर्तन और ५. भावपरिवर्तन।

इनमें से द्रव्यपरिवर्तन के दो भेद हैं – नोकर्मद्रव्यपरिवर्तन और कर्मद्रव्यपरिवर्तन।

०	+	+	१
+	०	१	+
१	।	०	०

यहाँ नोकर्म-द्रव्यपरिवर्तन का स्वरूप बतलाया गया है। उसी स्वरूप से समझाने के लिए मूल में संदृष्टि दी गई है।

जिससे अगृहीतसूचक शून्य (०) पुनः मिश्रसूचक हंसपद (+) और गृहीतसूचक एक का अंक (१) दिया गया है।

प्रथम कोष्ठक – इसका अभिप्राय यह है कि अनन्त बार अगृहीत परमाणुपुंज के ग्रहण करने के बाद एक बार मिश्र परमाणुपुंज का ग्रहण होता है। पुनः अनन्त बार उक्त क्रम से मिश्रग्रहण करने के बाद एक बार गृहीत परमाणुपुंज का ग्रहण होता है। इसप्रकार अनन्त बार गृहीतग्रहण हो जाने पर नोकर्मपुद्गलपरिवर्तन का प्रथम भेद समाप्त होता है। **यह संदृष्टि की प्रथम कोष्ठक-पंक्ति का अर्थ है।**

दूसरा कोष्ठक – तत्पश्चात् अनन्त बार मिश्र का ग्रहण होने पर एक बार अगृहीत का ग्रहण होता है। और अनन्त बार अगृहीत का ग्रहण हो जाने पर एक बार गृहीत का ग्रहण होता है। इसप्रकार से अनन्त बार गृहीत का ग्रहण हो जाने पर नोकर्मपुद्गलपरिवर्तन का दूसरा भेद समाप्त होता है। **यही दूसरी कोष्ठक-पंक्ति का अभिप्राय है।**

तीसरा कोष्ठक – पुनः अनन्त बार मिश्र का ग्रहण हो जाने पर एक बार गृहीत का और अनन्त बार गृहीत का ग्रहण हो जाने पर एक बार अगृहीत का ग्रहण होता है। इसप्रकार से अनन्त बार अगृहीतग्रहण होने पर नोकर्मपुद्गल का तीसरा भेद समाप्त होता है। **यही तीसरी कोष्ठक-पंक्ति का अर्थ है।**

चौथा कोष्ठक – पुनः अनन्त बार गृहीत का ग्रहण होने के पश्चात् एक बार मिश्र का और अनन्त बार मिश्र का ग्रहण होने पर एक बार अगृहीत का ग्रहण होता है। इसप्रकार से अनन्त बार अगृहीत का ग्रहण

हो जाने पर **नोकर्मपुद्गलपरिवर्तन का चौथा भेद समाप्त होता है।**

इस सबके समुदाय को नोकर्मद्रव्यपरिवर्तन कहते हैं। तथा इसमें जितना समय लगता है उसको नोकर्मद्रव्यपरिवर्तन का काल कहते हैं।

टीका – अब उक्त अगृहीत, मिश्र और गृहीतसंबंधी तीनों प्रकार के कालों का **अल्पबहुत्व** कहते हैं –

१. सबसे कम अगृहीतग्रहण का काल है।
२. अगृहीतग्रहण के काल के मिश्रग्रहण का काल अनन्तगुणा है।
३. मिश्रग्रहण के काल के जघन्य गृहीतग्रहण का काल अनन्तगुणा है।
४. जघन्य गृहीतग्रहण के काल से जघन्य पुद्गलपरिवर्तन का काल विशेष अधिक है।
५. जघन्य पुद्गलपरिवर्तन के काल से उत्कृष्ट गृहीतग्रहण का काल अनन्तगुणा है। और
६. उत्कृष्ट गृहीतग्रहणकाल से उत्कृष्ट पुद्गलपरिवर्तन का काल विशेष अधिक है।

१९. शंका – अगृहीतग्रहणकाल के सबसे कम होने का कारण क्या है?

समाधान – जो पुद्गल, नोकर्मपर्याय से परिणमित होकर पुनः अकर्मभाव को प्राप्त हो, उस अकर्मभाव से अल्पकाल तक रहते हैं, वे पुद्गल तो बहुत बार आते हैं; क्योंकि, उनकी द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावरूप चार प्रकार की योग्यता नष्ट नहीं होती है। किन्तु जो पुद्गल विवक्षित पुद्गलपरिवर्तन के भीतर नहीं ग्रहण किये गये हैं, वे चिरकाल के बाद आते हैं; क्योंकि, अकर्मभाव को प्राप्त होकर उस अवस्था में चिरकाल तक रहने से द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावरूप संस्कार का विनाश हो जाता है। कहा भी है –

गाथार्थ – *जो कर्मपुद्गल पहले बृद्धावस्था में सूक्ष्म अर्थात् अल्प स्थिति से संयुक्त थे, अतएव निर्जरा द्वारा कर्मरूप अवस्था से मुक्त*

अर्थात् रहित हुए, किन्तु आसन्न अर्थात् जीव के प्रदेशों के साथ जिनका एकक्षेत्रावगाह है, तथा जिनका आकार अनिर्दिष्ट अर्थात् कहा नहीं जा सकता है, इस प्रकार का पुद्गल द्रव्य बहुलता से ग्रहण को प्राप्त होता है ।।२० ।।

इस सूत्रोक्त कारण से अगृहीतग्रहण का काल अल्प होता है।

इसप्रकार इस सबका नाम नोकर्मपुद्गलपरिवर्तन है।

जिसप्रकार से नोकर्मपुद्गलपरिवर्तन कहा है, उसीप्रकार से कर्मपुद्गलपरिवर्तन भी कहना चाहिए।

विशेष बात यह है कि **नोकर्मपुद्गल, आहारवर्गणा से आते हैं। किन्तु कर्मपुद्गल, कार्मणवर्गणा से आते हैं।**

नोकर्मपुद्गलों के मिश्रग्रहण का काल तृतीय समय में ही होता है; किन्तु कर्मपुद्गलों के मिश्रग्रहण का काल तीन समय अधिक आवलीप्रमाण काल के व्यतीत होने पर होता है; क्योंकि, जो बन्धावली से अतीत हैं, एक समय अधिक आवली के द्वारा अपकर्षण के वश से जो उदय को प्राप्त हुए हैं और दो समय अधिक आवली के रहने पर जो अकर्मभाव को प्राप्त हु हैं, ऐसे कर्मपुद्गलों का तीन समय अधिक आवली के द्वारा कर्मपर्याय से परिणमन होकर अन्य पुद्गलों के साथ जीव में बंध को प्राप्त होना पाया जाता है।

विशेष बात यह है कि दोनों ही पुद्गलपरिवर्तनों में प्रथम समय में तद्भवस्थ अर्थात् उत्पन्न हुए, तथा प्रथम समय में ही आहारक हुए सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्त जीव के द्वारा जघन्य उपपादयोग से गृहीत कर्म और नोकर्मद्रव्य को ग्रहण करके आदि अर्थात परिवर्तन का प्रारंभ करना चाहिए।

यहाँ पर उपयुक्त गाथा इस प्रकार है –

गाथार्थ – *कर्मग्रहण के समय में जीव अपने गुणांश प्रत्ययों से, अर्थात् स्वयोग्य बंधकारणों से, जीवों से अनन्तगुणें कर्मों को अपने सर्व प्रदेशों में उत्पादन करता है ।।२१ ।।*

इस प्रकार द्रव्यपुद्गलपरिवर्तन समाप्त हुआ।

क्षेत्र, काल, भव और भावपुद्गलपरिवर्तनों को कहलाकर ग्रहण करा देना चाहिए।

उन परिवर्तनों की (संक्षेप से अर्थ-प्रतिपादक) गाथाएँ इसप्रकार हैं –

गाथार्थ – *१. इस जीव ने इस पुद्गलपरिवर्तनरूप संसार में एक-एक करके पुनः पुनः अनन्तबार सम्पूर्ण पुद्गल भोग करके छोड़े हैं ।।२२ ।।*

२. इस समस्त लोकरूप क्षेत्र में एक प्रदेश भी ऐसा नहीं है, जिसे कि क्षेत्रपरिवर्तनरूप संसार में क्रमशः भ्रमण करते हुए बहुत बार नाना अवगाहनाओं से इस जीव ने न छुआ हो ।।२३ ।।

३. कालपरिवर्तनरूप संसार में भ्रमण करता हुआ यह जीव, उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल के सर्व समयों की आवलियों में निरंतर बहुत बार उत्पन्न हुआ और मरा है ।।२४ ।।

४. भवपरिवर्तनरूप संसार में भ्रमण करता हुआ यह जीव, मिथ्यात्व के वश से जघन्य नारकायु से लगाकर (तिर्यंच, मनुष्य और) उपरिम ग्रैवेयक तक की भवस्थिति को बहुत बार प्राप्त हो चुका है ।।२५ ।।

५. यह जीव मिथ्यात्व के वशीभूत होकर भावपरिवर्तनरूप संसार में परिभ्रमण करता हुआ सम्पूर्ण प्रकृतियों के प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश बंधस्थानों को अनेक बार प्राप्त हुआ है ।।२६ ।।

जिन-वचनों को नहीं पा करके इस जीव ने अतीत काल में पाँचों ही परिवर्तन पुनः पुनः करके अनन्त बार परिवर्तित किये हैं ।।२७ ।।

जिसप्रकार कोई पुरुष नाना प्रकार के वस्त्रों के परिवर्तन को ग्रहण करता है अर्थात् उतारता है और पहनता है, उसीप्रकार से यह जीव भी पुद्गलपरिवर्तन काल में नाना शरीरों को छोड़ता और ग्रहण करता है ।।२८ ।।

१. अतीतकाल में एक जीव के सब से कम भावपरिवर्तन के बार हैं।
२. भवपरिवर्तन के बार भावपरिवर्तन के बारों से अनन्तगुणे हैं।
३. कालपरिवर्तन के बार भवपरिवर्तन के बारों से अनन्तगुणे हैं।
४. क्षेत्रपरिवर्तन के बार कालपरिवर्तन के बारों से अनन्तगुणे हैं।
५. पुद्गलपरिवर्तन के बार क्षेत्रपरिवर्तन के बारों से अनन्तगुणे हैं।

१. पुद्गलपरिवर्तन का काल सबसे कम है।
२. क्षेत्रपरिवर्तन का काल पुद्गलपरिवर्तन के काल से अनन्तगुणा है।
३. कालपरिवर्तन का काल क्षेत्रपरिवर्तन के काल से अनन्तगुणा है।
४. भवपरिवर्तन का काल कालपरिवर्तन के काल से अनन्तगुणा है।
५. भावपरिवर्तन का काल भवपरिवर्तन के काल से अनन्तगुणा हैं।

(इन परिवर्तनों की) विशेष जानकारी के लिये देखो सर्वार्थसिद्धि अध्याय २, १०; व गोम्मटसार जीवकाण्ड गाथा ५६० टीका)

इन ऊपर बतलाये गये पाँचों परिवर्तनों में से यहाँ पर पुद्गलपरिवर्तन से प्रयोजन है।

२०. शंका – कर्म और नोकर्म के भेद से पुद्गलपरिवर्तन दो प्रकार का है, उनमें से यहाँ पर किससे प्रयोजन है?

समाधान – यहाँ दोनों ही पुद्गलपरिवर्तनों से प्रयोजन है; क्योंकि, दोनों के काल में भेद नहीं है।

२१. शंका – यह भी कैसे जाना जाता है?

समाधान – पुद्गलपरिवर्तनकाल के अल्पबहुत्व बताते समय दोनों ही पुद्गलपरिवर्तनों को इकट्ठा करके काल का अल्पबहुत्वविधान किया गया है। इससे जाना जाता है कि दोनों पुद्गलपरिवर्तनों के काल में भेद नहीं हैं।

इस पुद्गलपरिवर्तनकाल का कुछ कम अर्धभाग सादि–सान्त मिथ्यात्व का काल होता है।

२२. शंका – सादि–सान्त मिथ्यात्व का काल कुछ कम अर्द्धपुद्गल–परिवर्तन कैसे होता है?

समाधान – एक अनादि मिथ्यादृष्टि अपरीतसंसारी (जिसका संसार बहुत शेष हैं ऐसा) जीव, अधःप्रवृत्तकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्ति–करण – इसप्रकार इन तीनों ही करणों को करके सम्यक्त्व ग्रहण के प्रथम समय में ही सम्यक्त्वगुण के द्वारा पूर्ववर्ती अपरीत संसारीपना हटाकर व परीतसंसारी हो करके अधिक से अधिक पुद्गलपरिवर्तन के आधे काल प्रमाण ही संसार में ठहरता है।

तथा, **सादि–सान्त मिथ्यात्व का काल कम से कम अन्तर्मुहूर्तमात्र है।** किन्तु यहाँ पर जघन्यकाल से प्रयोजन नहीं है, क्योंकि, उत्कृष्ट काल का अधिकार है। सम्यक्त्व के ग्रहण करन के प्रथम समय में ही मिथ्यात्व पर्याय नष्ट हो जाती है।

२३. शंका – सम्यक्त्व की उत्पत्ति और मिथ्यात्व का विनाश इन दोनों विभिन्न कार्यों का एक समय कैसे हो सकता है?

समाधान – नहीं; क्योंकि, जैसे एक ही समय में पिण्डरूप आकार से विनष्ट हुआ और घटरूप आकार से उत्पन्न हुआ मृतिका रूप द्रव्य पाया जाता है; उसीप्रकार कोई जीव सबसे कम अन्तर्मुहूर्तप्रमाण उपशमसम्यक्त्व के काल में रहकर मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ।

इसलिए मिथ्यात्व से वह आदि सहित उत्पन्न हुआ और सम्यक्त्वपर्याय से विनष्ट हुआ।

तत्पश्चात् मिथ्यात्वपर्याय से कुछ कम अर्द्धपुद्गलपरिवर्तन प्रमाण संसार में परिभ्रमण कर, अन्तिम भव के ग्रहण करने पर मनुष्यों में उत्पन्न हुआ।

(१) पुनः अन्तर्मुहूर्तकाल संसार के अवशेष रह जाने पर तीनों ही करणों को करके प्रथमोपशमसम्यक्त्व को प्राप्त हुआ।

(२) पुनः वेदकसम्यग्दृष्टि हुआ।

(३) पुनः अन्तर्मुहूर्तकाल द्वारा अनन्तानुबंधी कषाय का विसंयोजन करके।

(४) उसके बाद दर्शनमोहनीय का क्षय करके,

(५) पुनः अप्रमत्तसंयत हुआ।

(६) फिर प्रमत्त और अप्रमत्त, इन दोनों गुणस्थानों सम्बन्धी सहस्त्रों परिवर्तनों को करके,

(७) क्षपकश्रेणी पर चढ़ता हुआ अप्रमत्तसंयतगुणस्थान में अधःप्रवृत्त-करणविशुद्धि से शुद्ध होकर,

(८) अपूर्वकरण क्षपक, (९) अनिवृत्तिकरण क्षपक,

(१०) सूक्ष्मसाम्पराय क्षपक, (११) क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ,

(१२) सयोगिकेवली, (१३) और अयोगिकेवली होता हुआ सिद्ध हो गया।

(१४) इस प्रकार इन **चौदह अन्तर्मुहूर्तों से कम अर्द्धपुद्गलपरिवर्तन प्रमाण सादि और सान्त मिथ्यात्व का काल होता है।**

२४. शंका – मिथ्यात्व नाम, पर्याय का है। वह पर्याय, उत्पाद और विनाश लक्षणवाला है; क्योंकि उसमें स्थिति का अभाव है। और यदि उसकी स्थिति भी मानते हैं तो मिथ्यात्व के द्रव्यपना प्राप्त होता है; क्योंकि '**उत्पाद, स्थिति और भंग, अर्थात् व्यय ही द्रव्य का लक्षण है।**' इसप्रकार आर्ष वचन है?

समाधान – यह कोई दोष नहीं; क्योंकि, **जो अक्रम से (युगपत्) उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य इन तीनों लक्षणोंवाला होता है, वह द्रव्य है।**

और जो क्रम से उत्पाद, स्थिति और व्ययवाला होता है वह पर्याय है। इसप्रकार से जिनेन्द्र का उपदेश है।

२५. शंका – यदि ऐसा है तो पृथिवी, जल, तेज और वायु के पर्यायपना प्रसक्त होता है?

समाधान – भले ही उनके पर्यायपना प्राप्त हो जावे; क्योंकि वह हमें इष्ट है।

२६. शंका – किन्तु उन पृथिवी आदिकों में तो द्रव्य का व्यवहार लोक में दिखाई देता है?

समाधान – नहीं, वह व्यवहार शुद्धाशुद्धात्मक संग्रह-व्यवहाररूप नयद्वय-निबंधनक नैगमनय के निमित्त से होता है।

शुद्ध द्रव्यार्थिकनय के अवलंबन करने पर छहों ही द्रव्य हैं। और अशुद्ध द्रव्यार्थिकनय के अवलम्बन करने पर पृथिवी, जल आदिक अनेक द्रव्य होते हैं; क्योंकि **व्यंजनपर्याय के द्रव्यपना माना गया है।** किन्तु **शुद्ध पर्यायार्थिकनय की विवक्षा करने पर पर्याय के उत्पाद और विनाश, ये दो ही लक्षण होते हैं।**

अशुद्ध पर्यायार्थिकनय के आश्रय करने पर क्रम से तीनों ही पर्याय के लक्षण होते हैं, क्योंकि वज्रशिला, स्तम्भादि में व्यंजनसंज्ञिक उत्पन्न हुई पर्याय का अवस्थान पाया जाता है।

मिथ्यात्व भी व्यंजनपर्याय है, इसलिए इसके उत्पाद, स्थिति और भंग, ये तीनों ही लक्षण क्रम से अविरुद्ध हैं, ऐसा जानना चाहिए।

गाथार्थ – ***पर्यायनय के नियम से पदार्थ उत्पन्न भी होते हैं और व्यय को भी प्राप्त होते हैं। किन्तु द्रव्यार्थिकनय के नियम से सर्व-वस्तु सदा अनुत्पन्न और अविनष्ट है, अर्थात् ध्रौव्यात्मक है।।२९।।***

यह उक्त गाथा भी विरोध को नहीं प्राप्त होती है; क्योंकि, इसमें किया गया व्याख्यान शुद्ध द्रव्यार्थिकनय और शुद्ध पर्यायार्थिकनय को अवलम्बन करके स्थित है।

२७. शंका – 'जिन जीवों की सिद्धि भविष्यकाल में होनेवाली है, वे जीव भव्यसिद्ध कहलाते हैं' इस वचन के अनुसार सर्व भव्य जीवों का व्युच्छेद होना चाहिए, अन्यथा भव्यसिद्धों के लक्षण में विरोध आता है। तथा, जो राशि व्ययसहित होती है, वह कभी नष्ट नहीं होती है, ऐसा माना नहीं जा सकता है; क्योंकि अन्यत्र वैसा पाया नहीं जाता; अर्थात् सव्यय राशि का अवस्थान देखा नहीं जाता है?

समाधान – यह कोई दोष नहीं; क्योंकि भव्यसिद्ध जीवों का प्रमाण अनन्त है। और **अनन्त वही कहलाता है जो संख्यात या**

असंख्यातप्रमाण राशि के व्यय होने पर भी अनन्तकाल से भी नहीं समाप्त होता है। कहा भी है –

गाथार्थ – ***व्यय के होते रहने पर भी अनन्त काल के द्वारा भी जो राशि समाप्त नहीं होती है, उसे महर्षियों ने 'अनन्त' इस नाम से विनिर्दिष्ट किया है ।।३०।।***

२८. शंका – यदि ऐसा है, तो व्ययसहित अर्द्धपुद्गलपरिवर्तन आदि राशियों का अनन्तत्व नष्ट हो जाता है?

समाधान – उनका अनन्तपना नष्ट हो जाय, इसमें क्या दोष है?

२९. शंका – किन्तु उन अर्द्धपुद्गलपरिवर्तन आदि को में अनन्त का व्यवहार सूत्र तथा आचार्यों के व्याख्यान से प्रसिद्ध हुआ पाया जाता है?

समाधान – नहीं, क्योंकि उन पुद्गलपरिवर्तन आदि में अनन्तत्व का व्यवहार उपचार निबन्धनक है। अब इसी उपचारनिबन्धनता को स्पष्ट करते हैं –

जो पाषाणादि का स्तम्भ प्रत्यक्ष प्रमाण के द्वारा उपलब्ध है, वह जिसप्रकार उपचार से 'प्रत्यक्ष है' ऐसा लोक में कहा जाता है, उसी प्रकार से अवधिज्ञान के विषय का उल्लंघन करके जो राशियाँ स्थित हैं, **वे सब अनन्त प्रमाणवाले केवलज्ञान के विषय हैं, इसलिए उपचार से 'अनन्त हैं' इसप्रकार से कही जाती हैं।**

अतएव सूत्र और आचार्यों के व्याख्यान से प्रसिद्ध अनन्त के व्यवहार से यह व्याख्यान विरोध को प्राप्त नहीं होता है। अथवा, व्यय के होते रहने पर भी सदा अक्षय रहनेवाली कोई राशि है जो कि क्षय होनेवाली सभी राशियों के प्रतिपक्ष सहित पाई जाती है।

इसीप्रकार यह भव्यराशि भी अनन्त है, इसलिए व्यय के होते रहने पर भी अनन्तकाल द्वारा भी यह नहीं समाप्त होगी, यह बात सिद्ध हुई।

●

२

सासादन सम्यक्त्व

सूत्र – सासादनसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से एक समय तक होते हैं।।५।।

इस सूत्र का अवयवार्थ पहले कहा जा चुका है, इसलिए पुनरुक्त दोष के भय से यहाँ पर नहीं कहते हैं।

अब यहाँ पर एक समय की प्ररूपणा की जाती है। वह इस प्रकार से है – दो अथवा तीन, इसप्रकार एक अधिक वृद्धि से बढ़ते हुए पल्योपम के असंख्यातवें भागमात्र उपशमसम्यग्दृष्टि जीव उपशमसम्यक्त्व के काल में एक समय मात्र काल अवशिष्ट रह जाने पर एक साथ सासादन गुणस्थान को प्राप्त हुए, एक समय में दिखाई दिये।

दूसरे समय में सबके सब मिथ्यात्व को प्राप्त हो गये। उस समय तीनों ही लोकों में सासादनसम्यग्दृष्टियों का अभाव हो गया।

इसप्रकार एक **समय प्रमाण सासादन गुणस्थान** का नाना जीवों की अपेक्षा काल प्राप्त हुआ।

सूत्र – सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों का नाना जीवों की अपेक्षा उत्कृष्टकाल पल्योपम के असंख्यातवें भागप्रमाण है।।६।।

दो, अथवा तीन, अथवा चार इसप्रकार एक-एक अधिक वृद्धि द्वारा पल्योपम के असंख्यातवें भाग मात्र तक उपशमसम्यग्दृष्टि जीव **एक समय को आदि करके उत्कर्ष से छह आवलियाँ उपशमसम्यक्त्व का काल अवशिष्ट रहने पर सासादन गुणस्थान को प्राप्त हुए।** वे जब तक मिथ्यात्व को प्राप्त नहीं होते हैं, तबतक अन्य भी उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सासादन गुणस्थान को प्राप्त होते रहते हैं।

इसप्रकार से ग्रीष्मकाल के वृक्ष की छाया के समान उत्कर्ष से पल्योपम के असंख्यातवें भाग मात्र कालतक जीवों से अशून्य (परिपूर्ण) होकर, सासादन गुणस्थान पाया जाता है।

३०. शंका – सो वह काल कितना है?

समाधान – अपनी अर्थात् सासादन गुणस्थानवर्ती राशि से असंख्यातगुणा है। वह इसप्रकार है – सासादन गुणस्थान के निरन्तर उपक्रमण का काल आवली के असंख्यातवें भाग मात्र है। किन्तु सान्तर उपक्रमण के बार तो पल्योपम के असंख्यातवें भागमात्र हैं। ये बार इसप्रकार होते हैं, ऐसा मानकर सासादन गुणस्थान के उत्कृष्ट काल की उत्पत्ति का विधान कहते हैं। वह इसप्रकार है –

एक जीव के सासादन गुणस्थान के उपक्रमण बार का यदि मध्यम प्रतिपत्ति से आवली के असंख्यातवें भाग मात्र सासादन गुणस्थान का काल पाया जाता है, अथवा संख्यात आवली मात्र, अथवा आवली के संख्यातवें भाग मात्र काल पाया जाता है; तो पल्योपम के असंख्यातवें भागमात्र उपक्रमण बारों का कितना काल प्राप्त होगा?

इसप्रकार इच्छाराशि से गुणित फलराशि को प्रमाणराशि से अपवर्तित करने पर अपनी राशि से असंख्यातगुणा सासादन गुणस्थान का काल होता है, ऐसा ग्रहण करना चाहिए। यद्यपि इस विषय में कोई सूत्रप्रमाण उपलब्ध नहीं है, तो भी यह व्याख्यान सूत्र के समान श्रद्धान करने योग्य है।

सूत्र – एक जीव की अपेक्षा सासादनसम्यग्दृष्टि का जघन्य काल एक समय है।।७।।

अब इस सूत्र का अर्थ कहते हैं –

एक उपशमसम्यग्दृष्टि जीव उपशमसम्यक्त्व के काल में एक समय अवशिष्ट रहने पर सासादन-गुणस्थान को प्राप्त हुआ।

३१. शंका – यदि उपशमसम्यक्त्व का काल अधिक हो, तो क्या दोष है?

समाधान – नहीं, क्योंकि उपशमसम्यक्त्व का काल अधिक मानने पर सासादन गुणस्थान काल के भी बहुत्व का प्रसंग प्राप्त होता है, अर्थात् सासादनगुणस्थान का काल बहुत मानना पड़ेगा। इसका कारण यह है कि जितने उपशमसम्यक्त्वकाल के शेष रहने पर जीव सासादन-गुणस्थान को प्राप्त होता है, उतना ही सासादन गुणस्थान का काल होता है, ऐसा आचार्य परम्परागत उपदेश है।

कहा भी है –

गाथार्थ – *जितने प्रमाण उपशमसम्यक्त्व का काल अवशिष्ट रहता है, उस समय सासादन गुणस्थान को प्राप्त होनेवाले जीवों का भी उतने प्रमाण ही उसका, अर्थात् सासादन गुणस्थान का काल होता है।।३१।।*

इस पूर्व में बतलाए हुए प्रकार से उक्त जीव एक समय मात्र सासादन गुणस्थान के साथ, अर्थात् उस गुणस्थान में दिखाई दिया और द्वितीय समय में मिथ्यात्व को प्राप्त हो गया।

इसप्रकार सासादन गुणस्थान का एक जीव की अपेक्षा जघन्यकाल एक समयप्रमाण उपलब्ध हुआ।

सूत्र – एक जीव की अपेक्षा सासादनसम्यग्दृष्टि का उत्कृष्ट काल छह आवलीप्रमाण है।।८।।

अब इस सूत्र का अर्थ कहते हैं – एक उपशमसम्यग्दृष्टि जीव उपशमसम्यक्त्व के काल में छह आवलियों के शेष रहने पर सासादन-गुणस्थान में गया। उस सासादन गुणस्थान में छह आवली रह करके मिथ्यात्व में गया; क्योंकि साधिक छह आवलियों के शेष रहने पर सासादन गुणस्थान प्राप्त होने का अभाव है। कहा भी है –

गाथार्थ – *यदि उपशमसम्यक्त्व का काल छह आवलीप्रमाण अवशिष्ट होवे, तो जीव सासादन गुणस्थान को प्राप्त होता है। यदि इससे अधिक काल अवशिष्ट रहे, तो सासादन गुणस्थान को नहीं प्राप्त होता है।।३२।।*

(इस प्रकार एक जीव की अपेक्षा छह आवलीप्रमाण ही सासादन-गुणस्थान का उत्कृष्ट काल है।) ●

३

सम्यग्मिथ्यादृष्टि

सूत्र – सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं?
नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से अन्तर्मुहूर्त तक होते हैं।।९।।

सम्यग्मिथ्यात्व में आगमन –

इस सूत्र का अर्थ कहते हैं – मोहकर्म की अट्ठाईस प्रकृतियों की सत्ता रखनवाले १. मिथ्यादृष्टि, अथवा २. वेदकसम्यक्त्वसहित असंयतसम्यग्दृष्टि, ३. संयतासंयत तथा ४. प्रमत्तसंयत गुणस्थानवाले सात आठ जन अथवा आवली के असंख्यातवें भागमात्र जीव अथवा पल्योपम के असंख्यातवें भागमात्र जीव **परिणामों के निमित्त से** सम्यग्मिथ्यात्वगुणस्थान को प्राप्त हुए।

सम्यग्मिथ्यात्व से गमन एवं काल –

वहाँ पर सबसे कम अन्तर्मुहूर्त-कालप्रमाण रह करके १. मिथ्यात्व को अथवा २. असंयम के साथ सम्यक्त्व को प्राप्त हुए। तब सम्यग्मिथ्यात्व नष्ट हो गया। इसप्रकार सम्यग्मिथ्यात्व का अन्तर्मुहूर्तप्रमाण काल सिद्ध हुआ।

३२. शंका – यहाँ पर अप्रमत्तसंयत जीव, सम्यग्मिथ्यात्वगुणस्थान को क्यों नहीं प्राप्त कराया?

समाधान – नहीं; क्योंकि, **यदि अप्रमत्तसंयत जीव के संक्लेश की वृद्धि हो तो प्रमत्तसंयतगुणस्थान को, और यदि विशुद्धि की वृद्धि हो, तो अपूर्वकरण गुणस्थान को छोड़कर दूसरे गुणस्थान में गमन का अभाव है।**

यदि अप्रमत्तसंयत जीव का मरण भी हो तो असंयतसम्यगदृष्टि गुणस्थान को छोड़कर दूसरे गुणस्थानों में गमन नहीं होता।

३३. शंका – सम्यग्मिथ्यात्वदृष्टि जीव अपना काल पूरा कर पीछे संयम को अथवा संयमासंयम को क्यों नहीं प्राप्त कराया गया?

समाधान – नहीं; क्योंकि, उस सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव का मिथ्यात्व सहित मिथ्यादृष्टि गुणस्थान को अथवा सम्यक्त्व सहित असंयत गुणस्थान को छोड़कर दूसरे गुणस्थानों में गमन का अभाव है।

३४. शंका – अन्य गुणस्थानों में नहीं जाने का क्या कारण है?

समाधान – ऐसा स्वभाव ही है। और स्वभाव दूसरे के प्रश्न योग्य नहीं हुआ करता है, क्योंकि उसमें विरोध आता है।

सूत्र – नाना जीवों की अपेक्षा सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों का उत्कृष्टकाल पल्योपम के असंख्यातवें भागप्रमाण हैं।।१०।।

इस सूत्र का अर्थ कहते हैं – पूर्वोक्त गुणस्थानवर्ती जीव सम्यग्मिथ्यात्व को प्राप्त होकर और वहाँ पर अन्तर्मुहूर्त काल तक रहकर जबतक वे मिथ्यात्व को अथवा असंयमसहित सम्यक्त्व को नहीं प्राप्त होते हैं, जबतक अन्य अन्य भी पूर्वोक्त गुणस्थानवर्ती ही जीव सम्यग्मिथ्यात्व को प्राप्त कराते जाना चाहिए, जबतक कि सर्वोत्कृष्ट नाना जीवों की अपेक्षा रखनेवाला पल्योपम का असंख्यातवाँ भागमात्र काल पूरा हो। वह काल अपने गुणस्थानवर्ती जीवराशि से असंख्यातगुणा होता है। इसका भी कारण पूर्व के समान ही (स्वभाव) कहना चाहिए। उसके पश्चात् नियम से अन्तर हो जाता है।

सूत्र – एक जीव की अपेक्षा सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है।।११।।

इस सूत्र का अर्थ कहते हैं – एक मिथ्यादृष्टि जीव विशुद्ध होता हुआ सम्यग्मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ। पुनः **सर्वलघु अन्तर्मुहूर्तकाल रह** कर विशुद्ध होता हुआ ही असंयमसहित सम्यक्त्व को प्राप्त हुआ।

३५. शंका – संक्लेश को पूरित करके, अर्थात् संक्लेशपरिणामी होकर, सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्व को क्यों नहीं प्राप्त हुआ?

समाधान – नहीं, क्योंकि विशुद्धि के संपूर्णकाल तक अपने गुणस्थान में रह करके और संक्लेश को धारण करके मिथ्यात्व को जानेवाले जीव के सम्यग्मिथ्यात्वसंबंधी काल के बहुत्व का प्रसंग हो जायगा। इसका कारण यह है कि एक भी विशुद्धि के काल से संक्लेश और विशुद्धि, इन दोनों का ही काल, दोनों के अन्तराल में स्थित प्रतिभाग काल सहित निश्चय से संख्यातगुणा होता है, इसप्रकार के अभिप्राय से वह वर्धमान विशुद्धिवाला सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्व को नहीं प्राप्त कराया गया।

अथवा संक्लेश को प्राप्त होनेवाला वेदकसम्यग्दृष्टि जीव सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान को प्राप्त हुआ और वहाँ पर सर्वलघु अन्तर्मुहूर्तकाल रह करके अविनष्टसंक्लेशी हुआ ही मिथ्यात्व को चला गया। यहाँ पर भी कारण पूर्व के समान ही (स्वभाव) कहना चाहिए।

इस तरह दो प्रकारों से सम्यग्मिथ्यात्व के जघन्यकाल की प्ररूपणा समाप्त हुई।

सूत्र – एक जीव की अपेक्षा सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव का उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है ॥१२॥

वह इसप्रकार है – एक विशुद्धि को प्राप्त होनेवाला मिथ्यादृष्टि जीव सम्यग्मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ। वहाँ पर सर्वोत्कृष्ट **अन्तर्मुहूर्त काल** रहकर और संक्लेशयुक्त हो करके मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ। **पहले बतलाये गए इसी गुणस्थान के जघन्यकाल से यह उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा** है; क्योंकि वह सर्वोत्कृष्ट त्रिकाल के समूहात्मक है।

अथवा संक्लेश को प्राप्त होनेवाला वेदकसम्यग्दृष्टि जीव सम्यग्मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ। वहाँ पर **सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त** काल रह करके असंयतसम्यग्दृष्टि हो गया। यहाँ पर भी कारण पूर्व के समान (स्वभाव) ही कहना चाहिए। ●

४

अविरतसम्यक्त्व

सूत्र – असंयतसम्यग्दृष्टि जीव कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥१३॥

इसका कारण यह है कि अतीत, अनागत और वर्तमान – इन तीनों ही कालों में असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों का व्युच्छेद नहीं है।

३६. शंका – त्रिकाल में भी असंयतसम्यग्दृष्टि राशि का व्युच्छेद क्यों नहीं होता?

समाधान – ऐसा स्वभाव ही है।

३७. शंका – असंयतसम्यग्दृष्टि राशि का ऐसा स्वभाव है, यह कैसे जाना?

समाधान – सूत्र-पठित 'सर्वाद्धा' अर्थात् सर्वकाल रहते हैं, इस वचन से जाना।

३८. शका – विवादस्थ पक्ष ही हेतुपने को कैसे प्राप्त हो जायेगा?

समाधान – नहीं; क्योंकि, प्रत्येक जिनवचन साध्य-साधनरूप उभय पक्ष की शक्ति से युक्त होता है, इसलिए वह एक ही जिनवचन विवक्षित पक्ष के साधन करन में निश्चय से समर्थ है, इसमें उभय पक्ष के भी कोई विरोध नहीं आता।

३९. शंका – 'दिवाकर स्वतः उदित होता है' इस वचन के समान क्रियाविशेषण होन से 'सव्वद्धं' ऐसा पाठ होना चाहिए?

समाधान – नहीं; क्योंकि, उस प्रकार की विवक्षा का अभाव है।

४०. शंका – तो यहाँ पर किस प्रकार की विवक्षा है?

समाधान – वह विवक्षा इसप्रकार की है – सर्वकाल जिन जीवों के होता है, वे सर्वाद्धा कहलाते हैं अर्थात् **'सर्वकालसम्बन्धी जीव' यह 'सर्वाद्धा' पद का अर्थ है।**

सूत्र – एक जीव की अपेक्षा असंयतसम्यग्दृष्टि जीव का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है ॥१४॥

४१. शंका – यह काल कैसे संभव है?

अविरत सम्यक्त्व में आगमन –

समाधान – जिसने पहले असंयमसहित सम्यक्त्व में बहुत बार परिवर्तन किया है, ऐसा कोई एक मोहकर्म की अट्ठाईस प्रकृतियों की सत्ता रखनेवाला १. मिथ्यादृष्टि जीव अथवा २. सम्यग्मिथ्यादृष्टि अथवा ३. संयतासंयत अथवा ४. प्रमत्तसंयत जीव असंयतसम्यग्दृष्टि हुआ।

अविरत सम्यक्त्व से गमन –

फिर वह **सर्वलघु अन्तर्मुहूर्त** काल रह करके १. मिथ्यात्व को अथवा २. सम्यग्मिथ्यात्व को अथवा ३. संयमासंयम को अथवा ४. अप्रमत्तभाव के साथ संयम को प्राप्त हुआ।

ऊपर के गुणस्थानों से संक्लेश के साथ जो असंयतसम्यक्त्व को प्राप्त हुए हैं, वे जीव उसी अविनष्टसंक्लेश के साथ मिथ्यात्व अथवा सम्यग्मिथ्यात्व को प्राप्त कराना चाहिए।

जो अधःस्तन गुणस्थानों से विशुद्धि के साथ असंयम सहित सम्यक्त्व को प्राप्त हुए हैं, वे जीव उसी अविनष्टविशुद्धि के साथ संयमासंयम को अथवा अप्रमत्तभाव के साथ संयम को ले जाना चाहिए, अन्यथा असंयतसम्यक्त्व का जघन्यकाल नहीं बन सकता है।

सूत्र – असंयतसम्यग्दृष्टि जीव का उत्कृष्ट काल सातिरेक तेतीस सागरोपम है ॥१५॥

४२. शंका – यह सातिरेक तैतीस सागरोपमकाल कैसे संभव है?

समाधान – एक १. प्रमत्तसंयत अथवा २. अप्रमत्तसंयत अथवा ३. चारों उपशामकों में से कोई एक उपशामक जीव एक समय कम तैतीस सागरोपम आयुकर्म की स्थितिवाले अनुत्तर विमानवासी देवों में उत्पन्न हुआ और इसप्रकार असंयमसहित सम्यक्त्व की आदि हुई।

इसके पश्चात् वहाँ से च्युत होकर पूर्वकोटिवर्ष की आयुवाले

मनुष्यों में उत्पन्न हुआ। वहाँ पर वह अन्तर्मुहूर्तप्रमाण आयु के शेष रह जाने तक असंयतसम्यग्दृष्टि होकर रहा।

तत्पश्चात् **(१)** अप्रमत्तभाव से संयम को प्राप्त हुआ।

पुनः प्रमत्त और अप्रमत्तगुणस्थान में सहस्रो परिवर्तन करके,

(२) क्षपकश्रेणी के प्रायोग्य विशुद्धि से विशुद्ध हो, अप्रमत्तसंयत हुआ।

(३) पुनः अपूर्वकरणक्षपक, **(४)** अनिवृत्तिकरणक्षपक,

(५) सूक्ष्मसाम्परायक्षपक, **(६)** क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ,

(७) सयोगिकेवली, **(८)** और अयोगिकेवली,

(९) होकर के सिद्ध हो गया।

इन नौ अन्तर्मुहूर्तों से कम पूर्वकोटि काल से अतिरिक्त तैतीस सागरोपम असंयतसम्यग्दृष्टि का उत्कष्टकाल होता है।

४३. शंका – ऊपर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान का उत्कृष्ट काल बतलाते हुए उक्त जीव को एक समय कम तैतीस सागरोपम आयु की स्थितिवाले देवों में ही किसलिए उत्पन्न कराया गया है?

समाधान – नहीं, अन्यथा, अर्थात् एक समय कम तैतीस सागरोपम की स्थितिवाले देवों में यदि उत्पन्न न कराया जाय तो, असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान के काल में दीर्घता नहीं पाई जा सकती है; **क्योंकि यदि पूरे तैतीस सागरोपम आयु की स्थितिवाले देवों में उत्पन्न कराया जायेगा तो वर्षपृथकत्वप्रमाण आयु के अवशेष रहने पर निश्चय से वह संयम को प्राप्त हो जायेगा।**

किन्तु जो एक समय कम तैतीस सागरोपम आयु की स्थितिवाले देवों में उत्पन्न होकर मनुष्यों में उत्पन्न होगा, वह **अन्तर्मुहूर्त कम पूर्वकोटि प्रमाण काल असंयम के साथ रहकर पुनः निश्चय से संयत होगा।**

इसलिए, अर्थात्, **असंयतसम्यक्त्व के काल की दीर्घता बताने के लिए एक समय कम तैतीस सागरोपम आयु की स्थितिवाले अनुत्तरविमानवासी देवों में उत्पन्न कराया गया है।** ●

५

देशविरत गुणस्थान

सूत्र – संयतासंयत जीव कितने काल तक होते हैं?
नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥१६॥

इस सूत्र का अर्थ सुगम है, क्योंकि, असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान के काल में उसका प्ररूपण किया जा चुका है।

एक जीव की अपेक्षा संयतासंयत का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है॥१७॥

वह काल इसप्रकार संभव है –

देशविरत में आगमन – जिसने पहले भी बहुत बार संयमासंयम गुणस्थान में परिवर्तन किया है ऐसा कोई एक मोहकर्म की अट्ठाईस प्रकृतियों की सत्ता रखनेवाला १. मिथ्यादृष्टि अथवा २. असंयतसम्यग्दृष्टि अथवा ३. प्रमत्तसंयत जीव पुनः **परिणामों के निमित्त** से संयमासंयम गुणस्थान को प्राप्त हुआ। वहाँ पर सबसे कम अन्तर्मुहूर्त काल रह करके वह यदि प्रमत्तसंयतचर है, अर्थात्

देशविरत से गमन – प्रमत्तसंयतगुणस्थान से संयतासंयत गुणस्थान को प्राप्त हुआ है, तो १. मिथ्यात्व को अथवा २. सम्यग्मिथ्यात्व को अथवा ३. असंयतसम्यक्त्व को प्राप्त हुआ। अथवा ४. यदि वे पश्चात्कृत मिथ्यात्व या पश्चाकृत असंयमसम्यक्त्ववाले हैं, अर्थात् संयतासंयत होने के पूर्व मिथ्यादृष्टि या असंयतसम्यग्दृष्टि रहे हैं, तो ५. अप्रमत्तभाव के साथ संयम को प्राप्त हुए, क्योंकि यदि ऐसा न माना जाय तो संयतासंयत गुणस्थान का जघन्यकाल नहीं बन सकता।

४४. **शंका –** सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संयमासंयम गुणस्थान को किसलिए नहीं प्राप्त कराया गया?

समाधान – नहीं, क्योंकि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव के देशविरतिरूप पर्याय से परिणमन की शक्ति का होना असंभव है। कहा भी है –

गाथार्थ – ***सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव न तो मरता है, न संयम को प्राप्त होता है, न देशसंयम को भी प्राप्त होता है। तथा उसके मरणान्तिक-समुद्घात भी नहीं होता है ।।३३।।***

सूत्र – संयतासंयत जीव का उत्कृष्ट काल कुछ कम पूर्वकोटि वर्षप्रमाण है॥१८॥

वह काल इस प्रकार संभव है – मोहकर्म की अट्ठाईस प्रकृतियों की सत्ता रखनेवाला एक तिर्यंच अथवा मनुष्य मिथ्यादृष्टि जीव, संज्ञी पंचेन्द्रिय और पर्याप्तक ऐसे संमूर्च्छन तिर्यंच मच्छ, कच्छप, मेंडकादिकों में उत्पन्न हुआ, सर्वलघु अन्तर्मुहूर्तकाल द्वारा सर्व पर्याप्तियों से पर्याप्तपने को प्राप्त हुआ।

(१) पुनः विश्राम लेता हुआ। (२) विशुद्ध हो करके।

(३) संयमासंयम को प्राप्त हुआ। वहाँ पर पूर्वकोटि काल तक संयमासंयम को पालन करके मरा और सौधर्मकल्प को आदि लेकर आरण अच्युतान्त कल्पों के देवों में उत्पन्न हुआ। तब संयमासंयम नष्ट हो गया।

इसप्रकार आदि के **तीन अन्तर्मुहूर्तों से कम पूर्वकोटिप्रमाण संयमासंयम का काल होता है।**

●

६–७

प्रमत्ताप्रमत्त गुणस्थान

सूत्र – प्रमत्त और अप्रमत्तसंयत कितने काल तक होते हैं?
नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल होते हैं॥१९॥

चूंकि तीनों ही कालों में प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतों से विरहित एक भी समय नहीं है, इसलिए वे सर्वकाल होते हैं।

सूत्र – एक जीव की अपेक्षा प्रमत्त और अप्रमत्तसंयत का जघन्य काल एक समय है॥२०॥

वह इस प्रकार है – **पहले प्रमत्तसंयत का एक समय कहते हैं।**

एक अप्रमत्तसंयत जीव, अप्रमत्तकाल के क्षीण हो जाने पर तथा एक समयमात्र जीवित (जीवन) शेष रहने पर प्रमत्तसंयत हो गया।

प्रमत्तगुणस्थान के साथ एक समय दिखा और दूसरे समय में मरकर देव उत्पन्न हो गया। तब प्रमादविशिष्ट संयम नष्ट हो गया। इसप्रकार से प्रमत्तसंयत के एक समय की प्ररूपणा हुई।

अब अप्रमत्तसंयत के एक समय की प्ररूपणा करते हैं –

एक प्रमत्तसंयत जीव प्रमत्तकाल के क्षीण हो जाने पर तथा एक समयमात्र जीवन के शेष रह जाने पर अप्रमत्तसंयत हो गया। **तब अप्रमत्तगुणस्थान के साथ एक समय दिखा और दूसरे समय में मरकर देव हो गया।** पुनः अप्रमत्तगुणस्थान नष्ट हो गया।

अथवा उपशमश्रेणी से उतरता हुआ अपूर्वकरणसंयत एक समयमात्र जीवन के शेष रहने पर अप्रमत्त हुआ और द्वितीय समय में मरकर देवों में उत्पन्न हो गया। इस तरह दोनों प्रकारों से अप्रमत्तसंयत के एक समय की प्ररूपणा की गई।

सूत्र – प्रमत्त और अप्रमत्तसंयत का उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है॥२१॥

पहले प्रमत्तसंयत का उत्कृष्ट काल कहते हैं –

एक अप्रमत्तसंयत, **प्रमत्तसंयतपर्याय से परिणत होकर और सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कालप्रमाण रह करके मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ।**

इसप्रकार प्रमत्तसंयत के उत्कृष्ट काल की प्ररूपणा हुई।

अब अप्रमत्तसंयत का उत्कृष्ट काल कहते हैं – एक प्रमत्तसंयतजीव, **अप्रमत्तसंयत होकर, वहाँ पर सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल तक रह करके प्रमत्तसंयत जीव हो गया।**

यह अप्रमत्तसंयत के उत्कृष्ट काल की प्ररूपणा है।

८ से ११

चारों उपशामक गुणस्थान

सूत्र – चारों उपशमक जीव कितने काल तक होते हैं?
नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से एक समय होते हैं॥२२॥

वह इसप्रकार है – उपशमश्रेणी से उतरनेवाले दो, अथवा तीन अनिवृत्तिकरण उपशामक जीव एक समयमात्र जीवन के शेष रहने पर अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती उपशामक हुए। तब **एक समयमात्र अपूर्वकरण गुणस्थान के साथ दिखे। पुनः द्वितीय संयम में मरे और देव हो गये।**

इसप्रकार अपूर्वकरण उपशामक के एक समय की प्ररूपणा की।

४५. शंका – अप्रमत्तसंयत को अपूर्वकरण गुणस्थान में ले जा करके और द्वितीय समय में मरण कराके अपूर्वकरण गुणस्थान के एक समय की प्ररूपणा क्यों नहीं की?

समाधान – इसलिए नहीं कीं, कि अपूर्वकरणगुणस्थान के प्रथम समय से लेकर जब तक निद्रा और प्रचला, इन दो प्रकृतियों का बंध व्युच्छिन्न नहीं हो जाता है, तब तक अपूर्वकरणगुणस्थानवर्ती संयतों का मरण नहीं होता है।

इसीप्रकार शेष तीन उपशामकों के एक समय की प्ररूपणा नाना जीवों का आश्रय करके करना चाहिए।

विशेष बात यह है कि अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानवर्ती उपशामक जीवों के एक समय की प्ररूपणा उपशमश्रेणी चढ़ते हुए और उतरते हुए जीवों को आश्रय करके दोनों प्रकारों से करना चाहिए।

किन्तु उपशान्तकषाय उपशामक के एक समय की प्ररूपणा चढ़ते हुए जीवों को ही आश्रय करके करना चाहिए।

सूत्र – चारों उपशामकों का उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है॥२३॥

वह इसप्रकार है – सात आठ से लेकर चौवन तक अप्रमत्तसंयत जीव एक साथ अपूर्वकरण गुणस्थानी उपशामक हुए। जब तक वे अनिवृत्तिकरण गुणस्थान को नहीं प्राप्त होते हैं, तब तक अन्य अन्य भी अप्रमत्तसंयत जीव अपूर्वकरण गुणस्थान को प्राप्त कराना चाहिए।

इसी प्रकार से उपशमश्रेणी से उतरनेवाले अनिवृत्तिकरण गुणस्थानी उपशामक भी अपूर्वकरण गुणस्थान को प्राप्त कराना चाहिए। इसप्रकार **चढ़ते और उतरते हुए जीवों से अशून्य (परिपूर्ण) होकर अपूर्वकरण गुणस्थान उसके योग्य उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल पूरा होने तक रहता है।**

इसके पश्चात् निश्चय से विरह (अन्तराल) हो जाता है। इसीप्रकार से तीनों ही उपशामकों के उत्कृष्ट काल की प्ररूपणा करना चाहिए।

विशेष बात यह है कि उपशान्तकषाय उपशामक के उत्कृष्ट काल

को कहने पर एक उपशान्तकषाय जीव चढ़ करके जब तक नहीं उतरता है, तब तक अन्य-अन्य सूक्ष्मसाम्परायिक संयत उपशान्तकषाय गुणस्थान को चढ़ाना चाहिए।

इसप्रकार से पुनः पुनः संख्यात वार जीवों को चढ़ाकर उपशान्तकाल उसके योग्य अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होने तक बढ़ाना चाहिए।

सूत्र – एक जीव की अपेक्षा चारों उपशामकों का जघन्यकाल एक समय है॥२४॥

वह इसप्रकार है – एक अनिवृत्तिकरण उपशामक जीव एक समयमात्र जीवन शेष रहने पर अपूर्वकरण उपशामक हुआ, एक समय दिखा और द्वितीय समय में मरण को प्राप्त हुआ, तथा उत्तम जाति का अनुत्तरविमानवासी देव हो गया।

इसीप्रकार शेष तीनों उपशामकों के एक समय की प्ररूपणा करना चाहिए।

विशेष बात यह है कि **अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानी उपशामकों के चढ़ने और उतरने के विधान की अपेक्षा दोनों प्रकारों से तथा आरोहण का आश्रय करके उपशान्तकषाय उपशामक की एक प्रकार से एक समय की प्ररूपणा करना चाहिए।**

सूत्र – एक जीव की अपेक्षा चारों उपशामकों का उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है॥२५॥

वह इसप्रकार है – एक अप्रमत्तसंयत जीव अपूर्वकरण गुणस्थानी उपशामक हुआ। वहाँ पर सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त रहकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान को प्राप्त हुआ।

इसीप्रकार से तीनों उपशामकों के एक समय की प्ररूपणा कहना चाहिए। ●

८ से १२ व १४

चारों क्षपक, अयोगकेवली गुणस्थान

सूत्र – अपूर्वकरण आदि चारों क्षपक और अयोगिकेवली कितने काल तक होते हैं?

नाना जीवों की अपेक्षा जघन्य से अन्तर्मुहूर्त तक होते हैं ॥२६॥

वह इसप्रकार है – सात आठ जन अथवा अधिक से अधिक एक सौ आठ, अप्रमत्तसंयत जीव, अप्रमत्तकाल के क्षीण हो जाने पर, अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती क्षपक हुए। वहाँ पर अन्तर्मुहूर्त काल रह करके अनिवृत्तिकरण गुणस्थान को प्राप्त हुए।

इसीप्रकार से अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसाम्पराय, क्षीणकषायवीतराग-छद्मस्थ और अयोगिकेवली, इन चारों क्षपकों के जघन्यकाल की प्ररूपणा जान करके कहना चाहिए।

सूत्र – चारों क्षपकों का उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥२७॥

वह इसप्रकार से है – सात आठ जन अथवा बहुत से अप्रमत्तसंयत जीव अपूर्वकरण गुणस्थानी क्षपक हुए। वे वहाँ पर अन्तर्मुहूर्त रह करके अनिवृत्तिकरण गुणस्थानी हो गये। उसी ही समय में अन्य अप्रमत्तसंयत जीव अपूर्वकरण क्षपक हुए। इसप्रकार पुनः पुनः संख्यातवार आरोहणक्रिया के करने पर नाना जीवों का आश्रय करके अपूर्वकरण क्षपक का उत्कृष्ट काल होता है।

इसीप्रकार से चारों क्षपकों का काल जान करके कहना चाहिए।

सूत्र – एक जीव की अपेक्षा चारों क्षपकों का जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥२८॥

वह इसप्रकार है – एक अप्रमत्तसंयत जीव अपूर्वकरण गुणस्थानी क्षपक हुआ और अन्तर्मुहूर्त रह करके अनिवृत्तिकरण क्षपक हुआ। इसीप्रकार से चारों क्षपकों के जघन्यकाल की प्ररूपणा करना चाहिए।

सूत्र – एक जीव की अपेक्षा चारों क्षपकों का उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ॥२९॥

एक अप्रमत्तसंयत जीव अपूर्वकरण क्षपक हुआ। वहाँ पर सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त काल तक रह करके अनिवृत्तिकरण गुणस्थान को प्राप्त हुआ। यह एक जीव को आश्रय करके अपूर्वकरण का उत्कृष्ट काल हुआ।

इसीप्रकार से चारों क्षपकों का काल जान करके कहना चाहिए।

यहाँ पर **जघन्य और उत्कृष्ट, ये दोनों ही काल सदृश हैं; क्योंकि, अपूर्वकरण आदि के परिणामों की अनुकृष्टि का अभाव होता है।**

विशेषार्थ – यहाँ पर अपूर्वकरण आदि के परिणामों की अनुकृष्टि के अभाव कहने का अभिप्राय इसप्रकार है –

विवक्षित समय में विद्यमान जीव के अधस्तन समयवर्ती जीवों के परिणामों के साथ सादृशता होने को अनुकृष्टि कहते हैं।

अधःप्रवृत्तिकरण में भिन्न समयवर्ती जीवों के परिणामों में सदृशता पाई जाती है, इसलिए वहाँ पर अनुकृष्टि रचना बतलाई गई है।

किन्तु अपूर्वकरण आदि में उपरितन समयवर्ती जीवों के परिणामों की अधःस्तन समयवर्ती जीवों के परिणामों के साथ सदृशता नहीं पाई जाती है, इसलिए अपूर्वकरण आदि में अनुकृष्टि रचना का अभाव होता है।

इसीकारण अपूर्वकरण आदि गुणस्थानों के जघन्यकाल और उत्कृष्ट काल सदृश बतलाये गये हैं। ●

१३

सयोगकेवली गुणस्थान

सूत्र – सयोगिकेवली जिन कितने काल तक होते हैं?

नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल होते हैं ॥३०॥

चूँकि, तीनों ही कालों में एक भी समय सयोगिकेवली भगवान् से विरहित नहीं है, इसलिए सर्व कालपना बन जाता है।

सूत्र – एक जीव की अपेक्षा सयोगिकेवली का जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ॥३१॥

वह इसप्रकार है – एक क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ संयत जीव सयोगिकेवली हो, अन्तर्मुहूर्त काल रह, समुद्घात कर, पीछे योगनिरोध करके अयोगिकेवली हुआ।

इसप्रकार सयोगिजिन के जघन्य काल की प्ररूपणा एक जीव के आश्रय करके कही गई।

सूत्र – एक जीव की अपेक्षा सयोगिकेवली का उत्कृष्टकाल कुछ कम पूर्वकोटि है॥३२॥

वह इसप्रकार है – एक क्षायिकसम्यग्दृष्टि देव अथवा नारकी जीव पूर्वकोटि की आयुवाले मनुष्यों में उत्पन्न हुआ। सात मास गर्भ में रह करके गर्भ में प्रवेश करनेवाले जन्मदिन से आठ वर्ष का हुआ। (८) आठ वर्ष का होने पर (१) अप्रमत्तभाव से संयम को प्राप्त हुआ।

पुनः प्रमत्त और अप्रमत्तसंयत गुणस्थान सम्बन्धी सहस्रों परिवर्तनों को करके,

(२) अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में अधःप्रवृत्तकरण को करके,
(३) क्रमशः अपूर्वकरण, (४) अनिवृत्तिकरण,
(५) सूक्ष्मसाम्परायक्षपक, (६) और क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ होकर,
(७) सयोगिकेवली हुआ। पुनः वहाँ पर उक्त आठ वर्ष और सात अन्तर्मुहूर्तों से कम पूर्वकोटि कालप्रमाण विहार करके अयोगिकेवली हुआ।
(८) इसप्रकार आठ वर्ष और आठ अन्तर्मुहूर्तों से कम पूर्वकोटि वर्ष प्रमाण सयोगिकेवली का काल होता है।

(इसप्रकार ओघ प्ररूपणा समाप्त हुई)

आगे चौदह गुणस्थानों का नक्शों के माध्यम से गमनागमन का ज्ञान कराया है और वहाँ ही गोम्मटसार जीवकाण्ड में आये हुए महत्त्वपूर्ण विषय की जानकारी भी दी है। पाठक उसका लाभ लेवें।

अन्त में १४ गुणस्थानों के जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट काल का भी कथन संक्षेप में किया है।

मिथ्यात्व

दर्शनमोहनीय मिथ्यात्व कर्म के उदय के समय में अर्थात् निमित्त से होनेवाले जीव के तत्त्वार्थों के विपरीत श्रद्धानरूप भाव को **मिथ्यात्व गुणस्थान** कहते हैं। उसके पाँच भेद हैं।

प्रथम गुणस्थान में औदयिक भाव होते हैं, और द्वितीय गुणस्थान में पारिणामिक भाव होते हैं। मिश्र में क्षायोपशमिक भाव होते हैं। और चतुर्थ गुणस्थान में औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक इसप्रकार तीनों ही भाव होते हैं।

त्रिकाली निज शुद्धात्मा के निर्विकल्परूप ध्यान से मिथ्यात्व का नाश होता है और मोक्षमार्ग प्रगट होता है। इस कार्य के लिए अधःकरणादि तीनों करण परिणाम आवश्यक रहते हैं।

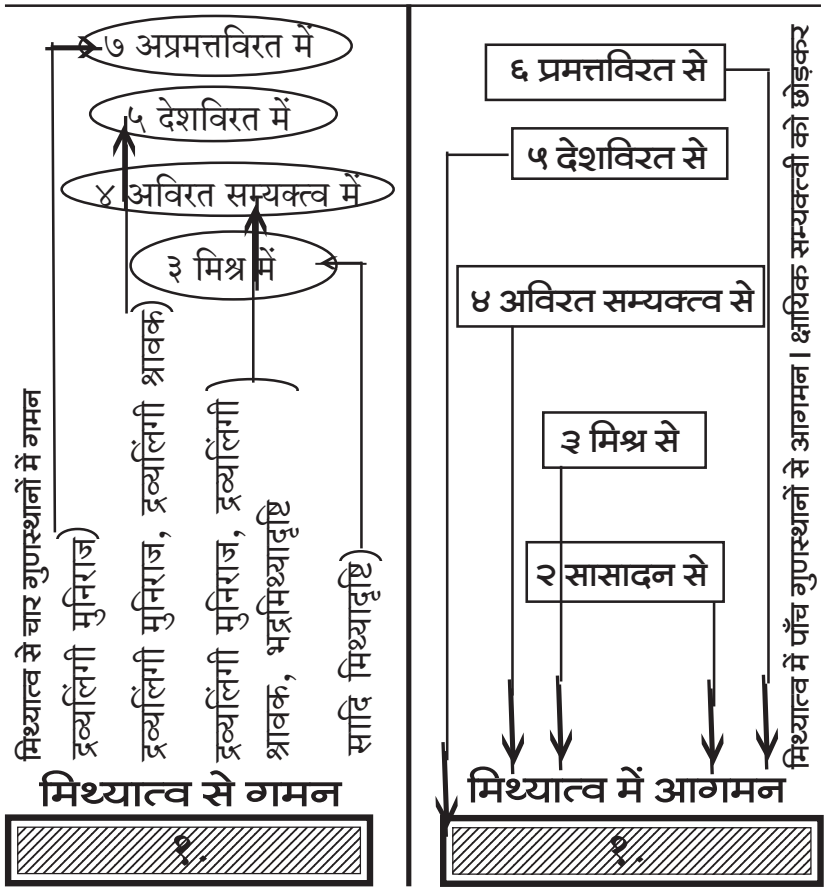

सासादन

प्रथमोपशम सम्यक्त्व के अंतर्मुहूर्त काल में से जब जघन्य एक समय या उत्कृष्ट छह आवली प्रमाण काल शेष रहे, उतने काल में अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ में से किसी एक कषाय के उदय में आने से सम्यक्त्व की विराधना होने पर श्रद्धा की जो अव्यक्त अतत्त्वश्रद्धानरूप परिणति होती है, उसको **सासन या सासादन गुणस्थान** कहते हैं।

सम्यक्त्वरूपी रत्नपर्वत के शिखर से गिरकर जो जीव मिथ्यात्वरूपी भूमि के सम्मुख हो चुका है, अतएव जिसने सम्यक्त्व की विराधना (नाश) कर दी है, और मिथ्यात्व को प्राप्त नहीं किया है, उसको सासन या **सासादन गुणस्थान–वर्ती** कहते हैं।

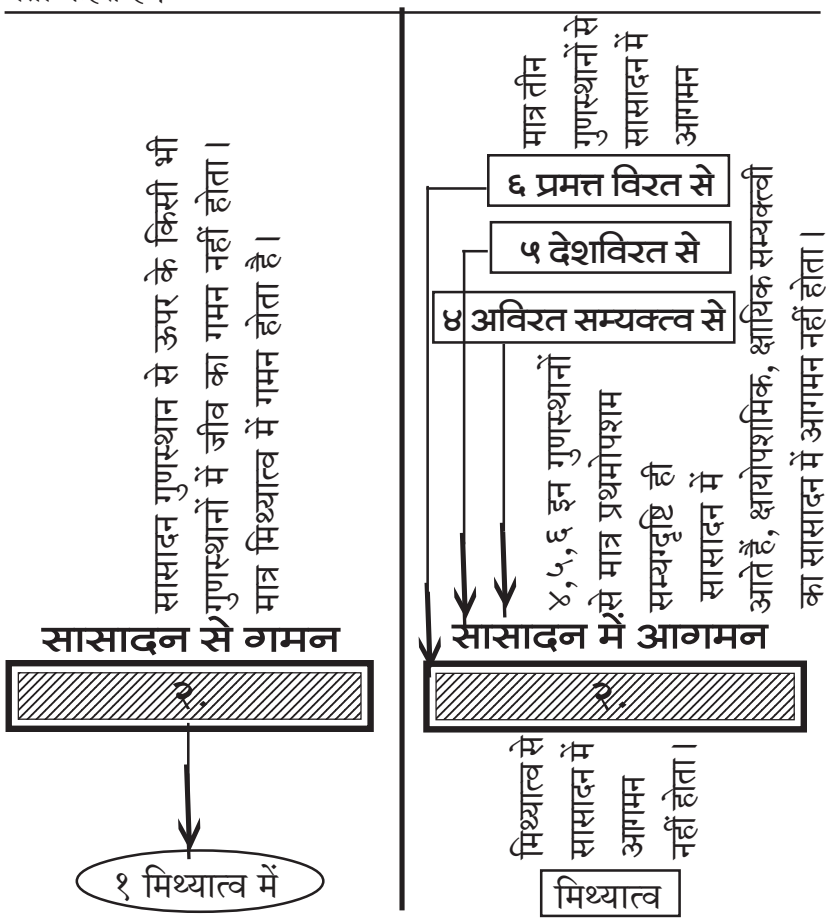

सम्यग्मिथ्यात्व

सम्यग्मिथ्यात्व नामक दर्शनमोहनीय कर्म के उदय के समय में अर्थात् निमित्त से गुड़ मिश्रित दही के स्वाद के समान होनेवाले जात्यन्तर परिणामों को **सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान** कहते हैं।

तृतीय गुणस्थानवर्ती जीव सकल संयम या देशसंयम को ग्रहण नहीं करता और न ही इस गुणस्थान में आयुकर्म का बन्ध होता है। तथा इस गुणस्थानवाला जीव यदि मरण करता है तो नियम से सम्यक्त्व या मिथ्यात्वरूप परिणामों को प्राप्त करके ही मरण करता है, किन्तु इस गुणस्थान में मरण नहीं होता है।

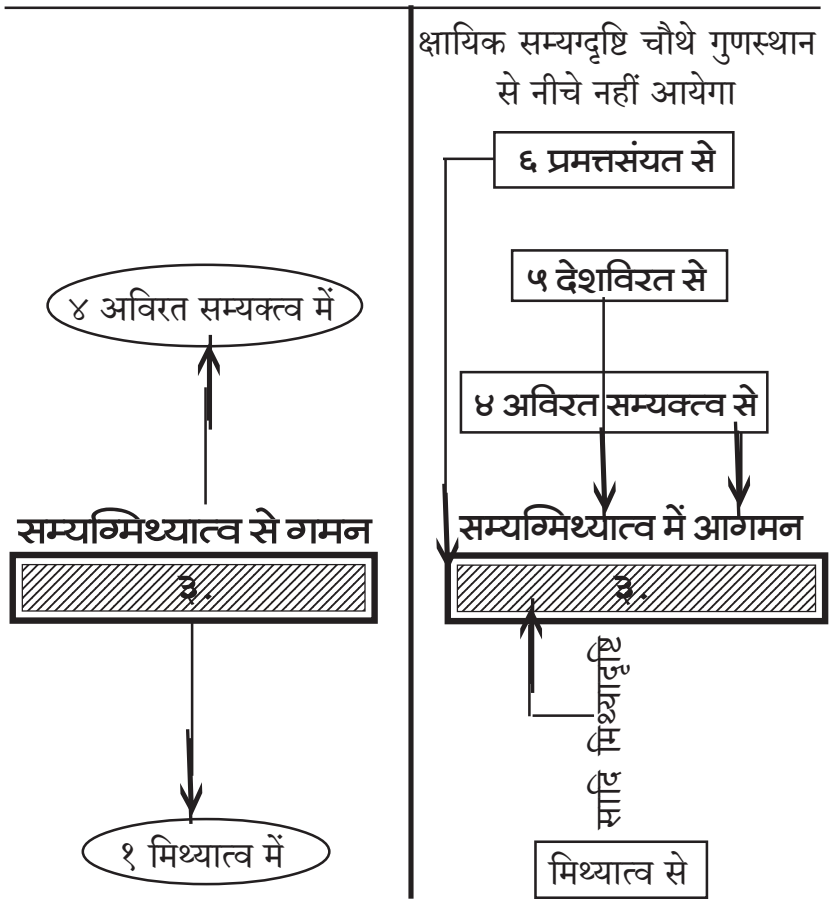

अविरतसम्यक्त्व

जो परिणाम सम्यग्दर्शन से सहित हो, परन्तु इन्द्रिय-विषयों से और त्रस-स्थावर की हिंसा से अविरत हो अर्थात् एकदेश या सर्वदेश किसी भी प्रकार के संयम से रहित हो; उस परिणाम को **अविरतसम्यक्त्व गुणस्थान** कहते हैं।

अप्रत्याख्यानावरण कषाय कर्म के उदय से असंयत होने पर भी पाँच, छह या सात (अनन्तानुबन्धी की चार और दर्शनमोहनीय की तीन) प्रकृतियों के उपशम, क्षय, क्षयोपशम की दशा में होनेवाले जीव के औपशमिक, क्षायिक तथा क्षायोपशमिक भावों को **अविरतसम्यक्त्व गुणस्थान** कहते हैं।

इस गुणस्थान के साथ 'असंयत' शब्द का जो प्रयोग किया है वह अन्तदीपक है। अतएव असंयत भाव प्रथम गुणस्थान से लेकर इस चतुर्थ गुणस्थान तक ही पाया जाता है। क्योंकि ऊपर के गुणस्थानों में से पाँचवें के साथ देशसंयत या संयतासंयत और फिर उसके ऊपर के सभी गुणस्थानों के साथ संयत विशेषण पाया जाता है।

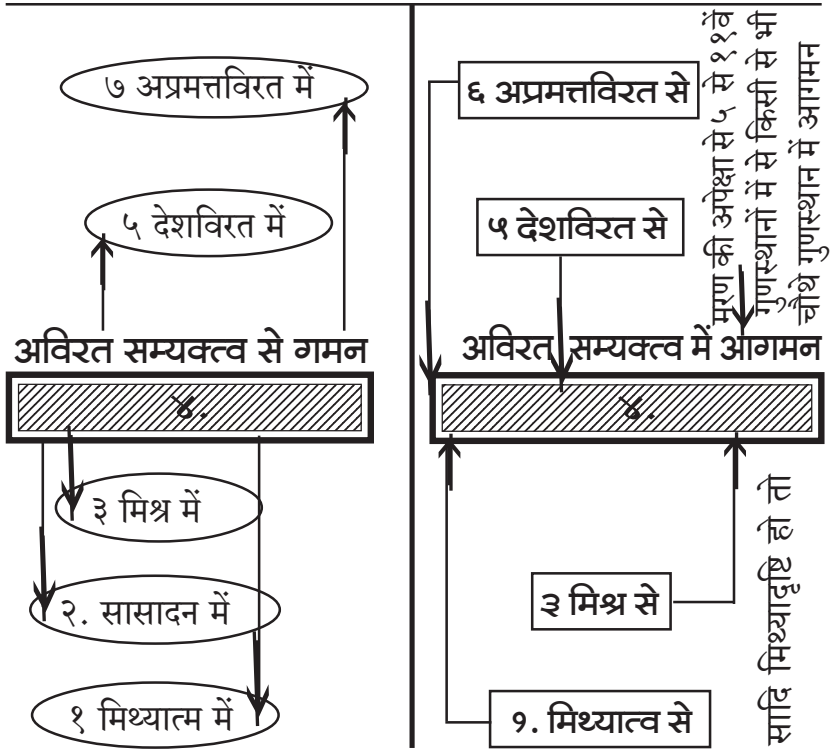

देशविरत

प्रत्याख्यानावरण कषाय कर्म के उदय काल में अर्थात् निमित्त से पूर्ण संयमभाव प्रगट नहीं होने पर भी सम्यग्दर्शनपूर्वक, अणुव्रतादि सहित तथा दो कषाय चौकड़ी के अभावपूर्वक व्यक्त होनेवाली वीतराग दशा को **देशविरत गुणस्थान** कहते हैं।

यहाँ पर प्रत्याख्यानावरण कषाय का उदय रहने से पूर्ण संयम तो नहीं होता, किन्तु यहाँ इतनी विशेषता होती है कि अप्रत्याख्यानावरण कषाय का उदय न रहने से एकदेश व्रत होते हैं। अतएव इस गुणस्थान का नाम **देशव्रत** या **देशसंयम** है। इसी को पाँचवाँ गुणस्थान कहते हैं।

बारह अंग के ज्ञाता सौधर्म इन्द्र, लौकांतिकदेव जितने और जैसे सुखी हैं उनसे भी देशविरत गुणस्थानवर्ती तिर्यंच एवं मनुष्य अधिक सुखी हैं; क्योंकि इन्द्र असंयमी है और तिर्यंच और मनुष्य सम्यक्त्व के साथ संयमासंयमी भी है।

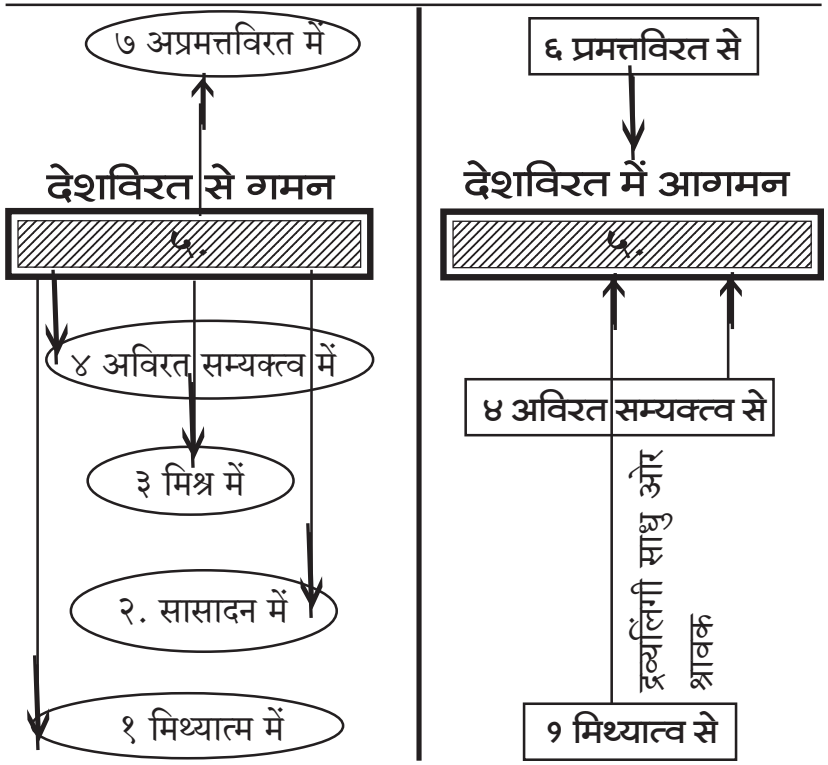

प्रमत्तविरत

जो (तीन कषाय चौकड़ी के अभावपूर्वक) वीतराग परिणाम, सम्यक्त्व और सकल व्रतों से सहित हो; किन्तु संज्वलन कषाय और नौ नोकषाय के तीव्र उदय निमित्त, प्रमाद सहित हो; उसे **प्रमत्तविरत गुणस्थान** कहते हैं।

जो महाव्रती संपूर्ण (२८) मूलगुण और शील के भेदों से युक्त होता हुआ भी व्यक्त एवं अव्यक्त दोनों प्रकार के प्रमादों को करता है वह प्रमत्तसंयत गुणस्थानवाला है। अतएव वह चित्रल आचरणवाला माना गया है।

इस छट्ठे गुणस्थानवर्ती मुनि का आचरण संज्वलन कषाय के तीव्र उदय से युक्त रहने के कारण चित्रल-चितकबरा - जहाँ पर दूसरे रंग का भी सद्भाव पाया जाय, ऐसा हुआ करता है। और यह व्यक्त अव्यक्त दोनों ही प्रकार के प्रमादों से युक्त रहा करता है।

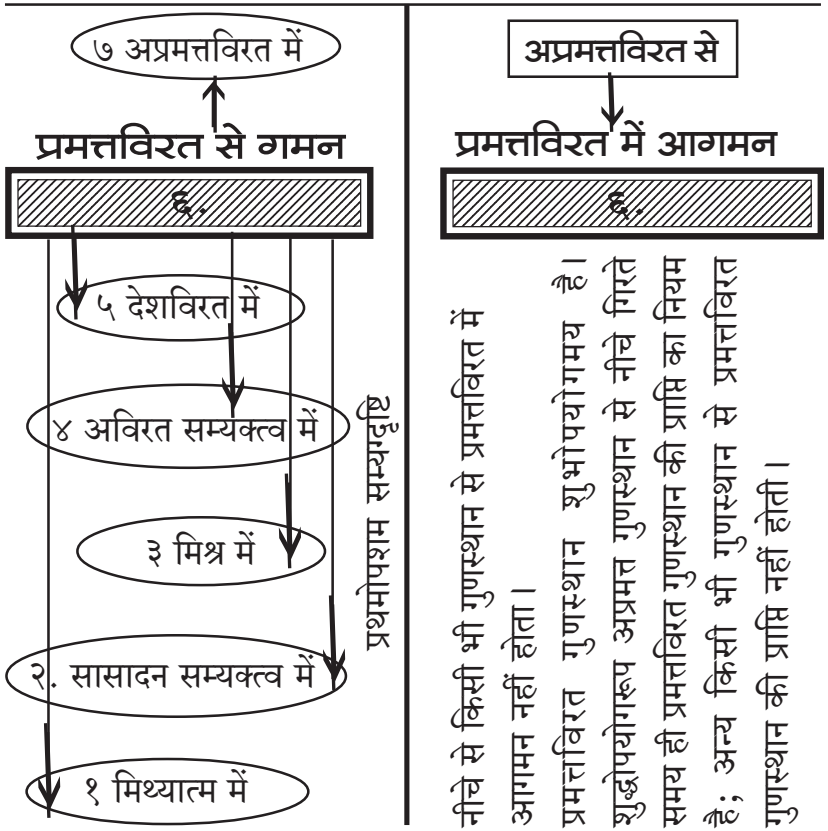

अप्रमत्तविरत

संज्वलन कषाय तथा नौ नोकषायों के मंद उदय के समय में अर्थात् निमित्त से प्रमाद रहित होनेवाली वीतरागदशा को **अप्रमत्तसंयत गुणस्थान** कहते हैं।

जिनके व्यक्त और अव्यक्त सभी प्रकार के प्रमाद नष्ट हो गये हैं; जो व्रत, गुण और शीलों से मंडित हैं, जो निरंतर आत्मा और शरीर के भेदविज्ञान से युक्त हैं, जो उपशम और क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ नहीं हुए हैं और जो ध्यान में लवलीन हैं; उन्हें **अप्रमत्तसंयत** कहते हैं।

अधःप्रवृत्तकरण के काल में से ऊपर के समयवर्ती जीवों के परिणाम नीचे के समयवर्ती जीवों के परिणामों के सदृश - अर्थात् संख्या और विशुद्धि की अपेक्षा समान - होते हैं, इसलिये प्रथम करण को **अधःप्रवत्तकरण** कहा है।

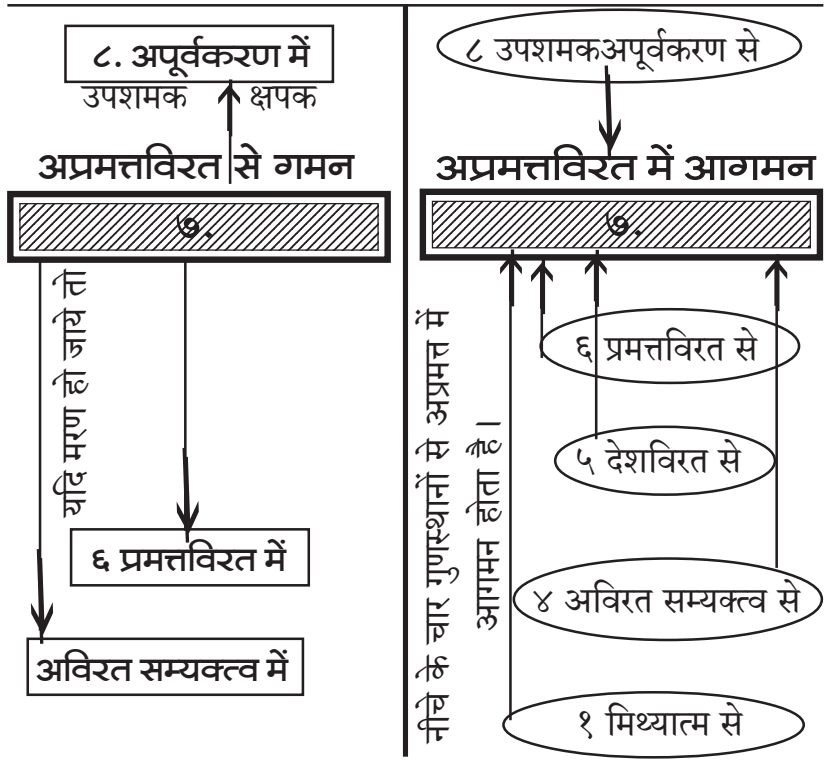

अपूर्वकरण

अधःप्रवृत्तकरण संबंधी अंतर्मुहूर्त काल पूर्ण कर प्रति समय अनंतगुणी शुद्धि को प्राप्त हुए परिणामों को **अपूर्वकरण गुणस्थान** कहते हैं। इसमें अनुकृष्टि रचना नहीं होती।

यहाँ पर (अपूर्वकरण में) भिन्नसमयवर्ती जीवों में विशुद्ध परिणामों की अपेक्षा कभी भी सादृश्य नहीं पाया जाता; किन्तु एकसमयवर्ती जीवों में सादृश्य और वैसादृश्य दोनों ही पाये जाते हैं।

इस गुणस्थान का काल अन्तर्मुहूर्तमात्र है और इसमें परिणाम असंख्यात लोक प्रमाण होते हैं और वे परिणाम उत्तरोत्तर प्रतिसमय समानवृद्धि को लिये हुए हैं।

इस गुणस्थान में चार आवश्यक कार्य हुआ करते हैं। (१) गुणश्रेणी निर्जरा (२) गुणसंक्रमण (३) स्थितिखण्डन (४) अनुभागखण्डन। ये चारों ही कार्य पूर्वबद्ध कर्मों में हुआ करते हैं। इनमें अनुभागखण्डन पूर्वबद्ध सत्तारूप अप्रशस्त प्रकृतियों के अनुभाग का हुआ करता है। क्योंकि इनके बिना चारित्रमोह की २१ प्रकृतियों का उपशम या क्षय नहीं हो सकता। अतएव अपूर्व परिणामों के द्वारा इन कार्यों को करके उपशम-क्षपण के लिये यहीं से वह उद्यत हो जाया करता है।

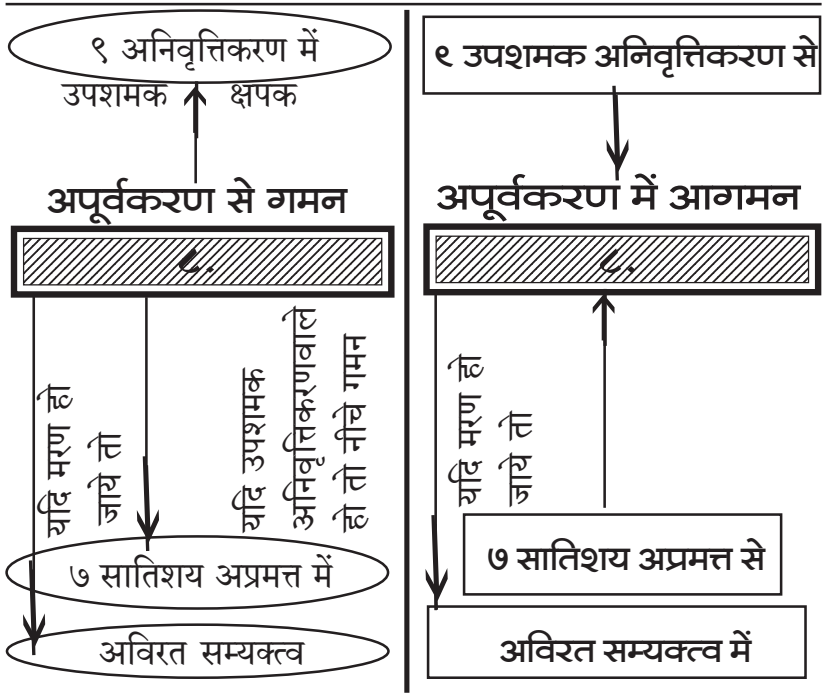

अनिवृत्तिकरण

अत्यन्त निर्मल ध्यानरूपी अग्नि शिखाओं के द्वारा, कर्म-वन को दग्ध करने में समर्थ, प्रत्येक समय के एक-एक सुनिश्चित वृद्धिंगत वीतराग परिणामों को **अनिवृत्तिकरण गुणस्थान** कहते हैं।

यहाँ पर एक समयवर्ती नाना जीवों के परिणामों में पाई जानेवाली विशुद्धि में परस्पर निवृत्ति-भेद नहीं पाया जाता, अतएव इन परिणामों को अनिवृत्तिकरण कहते हैं। अनिवृत्तिकरण का जितना काल है उतने ही उसके परिणाम हैं। इसलिये प्रत्येक समय में एक ही परिणाम होता है। यही कारण है कि यहाँ पर भिन्नसमयवर्ती जीवों के परिणामों में **सर्वथा विसदृशता** और एक समयवर्ती जीवों के परिणामों में सर्वथा **सदृशता** ही पाई जाती है। इन परिणामों से ही आयुकर्म को छोड़कर शेष सात कर्मों की गुणश्रेणि निर्जरा, गुणसंक्रमण, स्थितिखण्डन, अनुभागखण्डन होता है और मोहनीय कर्म की बादरकृष्टि सूक्ष्मकृष्टि आदि हुआ करती है।

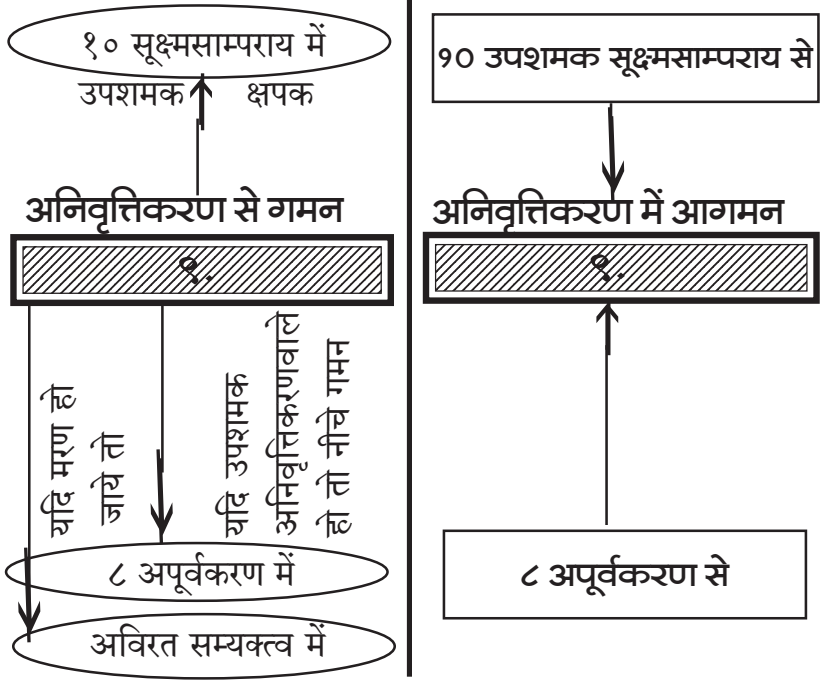

सूक्ष्मसाम्पराय

धुले हुए कौसुंभी वस्त्र की सूक्ष्म लालिमा के समान सूक्ष्म लोभ का वेदन करनेवाले उपशमक अथवा क्षपक जीवों के यथाख्यात चारित्र से किंचित् न्यून वीतराग परिणामों को **सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान** कहते हैं।

कर्मों के फल देने की शक्ति को **अनुभाग** और उस शक्ति के सबसे छोटे अंश को जिसका कि फिर दूसरा भाग नहीं हो सकता **अविभागप्रतिच्छेद** कहते हैं। कृष्टि शब्द का अर्थ कृश करना होता है। यहाँ पर इसका आशय अनुभाग शक्ति को कृश करने से है। जहाँ तक स्थूल खण्ड होते हैं, वहाँ तक बादरकृष्टि और जहाँ सूक्ष्म खण्ड होते हैं वहाँ सूक्ष्मकृष्टि कही जाती है। ये सब कार्य नौवें गुणस्थान में उसके संख्यात बहुभाग बीत जाने पर एक भाग में अनिवृत्तिकरण परिणामों के द्वारा सत्ता में बैठे हुए कर्मों में हुआ करते हैं। किन्तु सूक्ष्मकृष्टिगत लोभ कषाय के इन कर्मस्कन्धों का दशवें गुणस्थान के प्रथम समय में उदय होकर वेदन हुआ करता है।

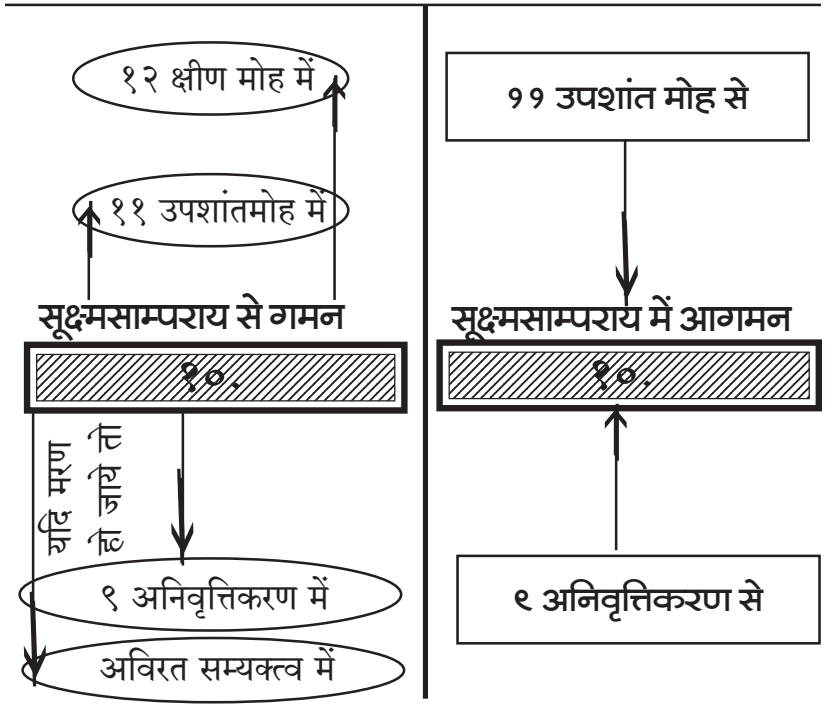

उपशांतमोह

निर्मली फल से सहित स्वच्छ जल के समान अथवा शरदकालीन सरोवर–जल के समान सर्व मोहोपशमन के समय व्यक्त होनेवाली पूर्ण वीतरागी दशा को **उपशांतमोह गुणस्थान** कहते हैं।

इस गुणस्थान का पूरा नाम ''उपशान्तकषाय वीतराग छद्मस्थ'' है। छद्म शब्द का अर्थ है ज्ञानावरण दर्शनावरण। जो जीव इनके उदय की अवस्था में पाये जाते हैं, वे सब छद्मस्थ हैं। छद्मस्थ भी दो तरह के हुआ करते हैं – एक सराग, दूसरे वीतराग। ग्यारहवें बारहवें गुणस्थानवर्ती जीव वीतराग और इनसे नीचे के सब सराग छद्मस्थ हैं। कर्दम सहित जल में निर्मली डालने से कर्दम नीचे बैठ जाता है और ऊपर स्वच्छ जल रह जाता है। इसीप्रकार इस गुणस्थान में मोहकर्म के उदयरूप कीचड़ का सर्वथा उपशम हो जाता है और ज्ञानावरण का उदय रहता है। इसीलिए इस गुणस्थान का यथार्थ नाम **उपाशान्तकषाय वीतराग छद्मस्थ** है।

यहाँ पर चारित्र की अपेक्षा केवल औपशमिक भाव और सम्यक्त्व की अपेक्षा औपशमिक और क्षायिक इस तरह से दो भाव पाये जाते हैं।

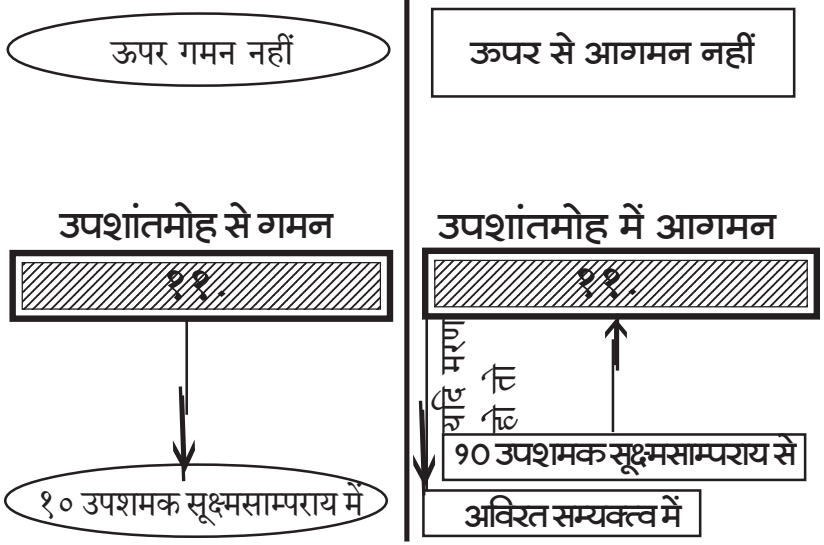

क्षीणमोह

स्फटिकमणि के पात्र में रखे हुए निर्मल जल के समान संपूर्ण कषायों के क्षय के समय होनेवाले जीव के अत्यन्त निर्मल वीतरागी परिणामों को **क्षीणमोह गुणस्थान** कहते हैं।

जिस छद्मस्थ के, वीतरागता के विरोधी मोहनीय कर्म के द्रव्य एवं भाव दोनों ही प्रकारों का अथवा प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशरूप चारों ही भेदों का सर्वथा बंध, उदय, उदीरणा एवं सत्त्व की अपेक्षा क्षय हो जाता है; वह बारहवें गुणस्थानवाला माना जाता है। इसलिए आगम में इसका नाम क्षीणकषाय वीतराग छद्मस्थ ऐसा बताया है। यहाँ छद्मस्थ शब्द अन्तदीपक है। और वीतराग शब्द नाम, स्थापना और द्रव्यरूप वीतरागता की निवृत्ति के लिए है। तथा यहाँ पर पाँच भावों में से मोहनीय के सर्वथा अभाव की अपेक्षा से एक क्षायिक भाव ही माना गया है।

विशेषता – १. मात्र साता वेदनीय का ईर्यापथास्रव ही होता है। २. इसके अंतिम समय में तीन घातिया कर्मों का क्षय होता है। ३. चतुर्थ गुणस्थान से यहाँ तक सभी जीव ''अन्तरात्मा'' संज्ञक हैं। ४. ''क्षीणमोह'' शब्द आदि दीपक हैं। यहाँ से उपरिम सभी जीव क्षीणमोही ही हैं। जैसे क्षीणमोही सयोगकेवली आदि।

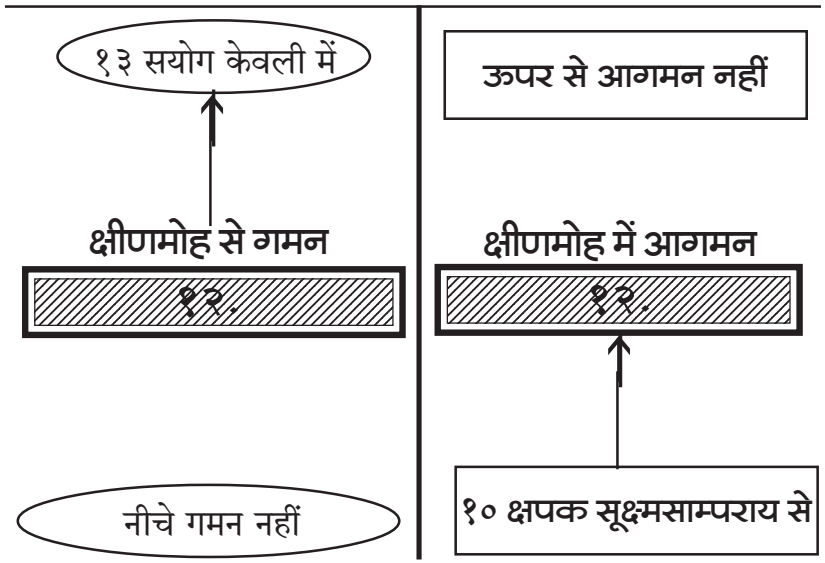

सयोगकेवली

घाति चतुष्क के क्षय के काल में औदयिक अज्ञान नाशक तथा असहाय केवलज्ञानादि नव लब्धिसहित होने पर परमात्मा संज्ञा को प्राप्त जीव की योगसहित वीतराग दशा को **सयोगकेवली गुणस्थान** कहते हैं।

जिन के दो भेद हैं – सयोग और अयोग। गोम्मटसार गाथा नं. ६४ में सयोग का और आगे की गाथा नं. ६५ में अयोग जिन का विशेष स्वरूप बताया गया है। एकत्ववितर्क शुक्लध्यान के प्रभाव से तेरहवें गुणस्थान के पहले ही समय में छद्मस्थता का व्यय और केवलित्व–सर्वज्ञता का उत्पाद एक साथ ही हो जाया करता है। क्योंकि वस्तु का स्वभाव ही उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यात्मक है। यहाँ पर ''सयोग'' यह जिन का विशेषण है और वह अन्त दीपक है।

विशेषता – १. यहाँ से ''परमात्मा'' संज्ञा प्रारंभ होती है। २. सम्यक्त्व के आज्ञा आदि दस भेदों में से यहाँ परमावगढ़ सम्यक्त्व होता है। क्षायिक सम्यक्त्व को ही केवलज्ञान के सद्भाव से परमावगाढ़ सम्यक्त्व कहते हैं। ३. यहाँ ''सयोग'' शब्द अन्त–दीपक है। यहाँ पर्यंत के सभी जीव योग सहित हैं। जैसे – सयोग मिथ्यात्व, सयोग सासादनसम्यक्त्व आदि। ४. ''केवली'' शब्द आदि–दीपक है। सर्वज्ञता यहाँ प्रगट होती है और सिद्धावस्था में अनन्तकाल तक रहती है।

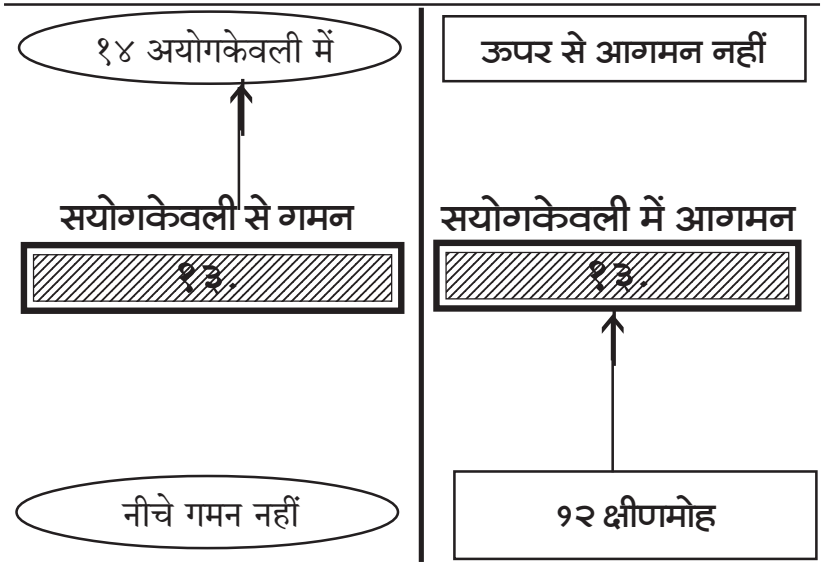

अयोगकेवली

सम्पूर्ण शील के ऐश्वर्य से सम्पन्न, सर्व आस्रव निरोधक, कर्मबंध रहित जीव की योगरहित वीतराग सर्वज्ञ दशा को **अयोगकेवली गुणस्थान** कहते हैं।

आगम में शील के १८ हजार भेदों को अनेक प्रकार से बताया है, किन्तु उनमें से एक प्रकार जो कि श्री कुन्दकुन्द भगवान् ने अपने मूलाचार के शीलगुणाधिकार में बताया है, उसे हम यहाँ दे रहे हैं।

मतलब यह है कि तीन योग, तीन करण, चार संज्ञाएँ, पाँच इन्द्रिय, पृथ्वीकायिक आदि दश जीवभेद और उत्तम क्षमा आदि दश श्रमण धर्म, इनको परस्पर गुणा करने से शील के १८ हजार भेद होते हैं।

योग, संज्ञा, इन्द्रिय और श्रमण धर्म का अर्थ प्रसिद्ध है। अशुभकर्म के ग्रहण में कारणभूत क्रियाओं के निग्रह करने को अर्थात् अशुभयोगरूप प्रवृत्ति के परिहार को करण कहते हैं। निमित्त भेद से इसके भी तीन भेद हैं – मन, वचन और काय। रक्षणीय जीवों के दश भेद हैं : यथा –

पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, प्रत्येक, साधारण वनस्पति और द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय।

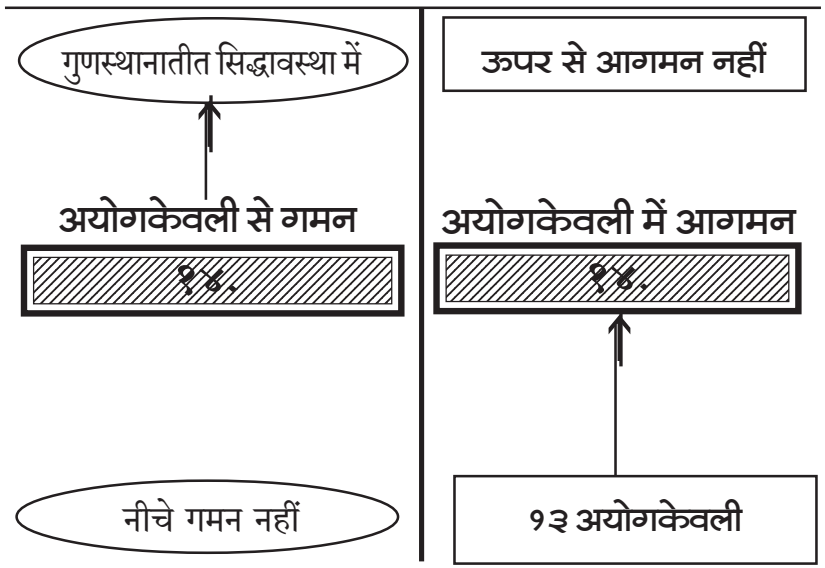

गुणस्थानों का काल

१. **मिथ्यात्व** – अनादि काल; क्योंकि प्रत्येक जीव पर्यायगत स्वभाव से सहज ही मिथ्यादृष्टि रहता है।
फिर एक बार मिथ्यात्व छूटने से सम्यग्दृष्टि होकर बाद में जीव **जघन्यकाल अंन्तमुहूर्त पर्यंत मिथ्यादृष्टि रहेगा** ही।
उत्कृष्टकाल किंचित्न्यून अर्द्धपुद्गल परावर्तन।

२. **सासादन** – जघन्यकाल **एक समय।** उत्कृष्टकाल **६ आवली।**

३. **मिश्र** – जघन्यकाल **सर्वलघु अंतर्मुहूर्त।**
उत्कृष्टकाल **सर्वोत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त।**

४. **अविरत सम्यक्त्व** – जघन्यकाल अंतर्मुहूर्त।
उत्कृष्टकाल साधिक ३३ सागर।

५. **देशविरत – जघन्यकाल अंतर्मुहूर्त।**
मनुष्य की अपेक्षा **उत्कृष्टकाल आठ वर्ष एक अंतर्मुहूर्त कम एक पूर्व कोटी।**
तिर्यंच की अपेक्षा तीन अंर्तमुहूर्त कम एक पूर्व कोटि वर्ष।

६. **प्रमत्तविरत** – मरण की अपेक्षा **जघन्य काल एक समय।**
उत्कृष्टकाल केवलज्ञानगम्य **अंतर्मुहूर्त।**

७. **अप्रमत्तविरत** – मरण की अपेक्षा जघन्य काल एक समय।
उत्कृष्ट काल केवलज्ञानगम्य अंतर्मुहूर्त; तथापि छठवें गुणस्थान के काल से आधा काल।

८. **अपूर्वकरण** – नौवें गुणस्थान से नीचे पतन के समय अपूर्वकरण में आकर मरण हो जाय तो **जघन्यकाल एक समय।**
८वें गुणस्थान से चढ़ते समय प्रथम भाग में मरण नहीं होता।

उत्कृष्टकाल अंतर्मुहूर्त; तथापि सातवें गुणस्थान से अल्पकाल।

९. **अनिवृत्तिकरण –** क्षपक अनिवृत्तिकरण के काल का जघन्य–उत्कृष्ट भेद नहीं अर्थात् **केवलज्ञानगम्य अंतर्मुहूर्त।**
उपशमक अनिवृत्तिकरण का जघन्यकाल मरण की अपेक्षा **एक समय और उत्कृष्टकाल केवलज्ञानगम्य अंतर्मुहूर्त।**

१०. **सूक्ष्मसाम्पराय –** क्षपक सूक्ष्मसाम्पराय का काल केवलज्ञानगम्य अंतर्मुहूर्त। इसके जघन्य उत्कृष्ट भेद नहीं; तथापि अनिवृत्तिकरण के काल की अपेक्षा कम काल।
उपशमक सूक्ष्मसांपराय का जघन्य काल **मरण की अपेक्षा एक समय,** उत्कृष्ट काल केवलज्ञानगम्य **अंतर्मुहूर्त।**

११. **उपशांतमोह –** मरण की अपेक्षा जघन्यकाल एक समय।
उत्कृष्ट काल केवलज्ञानगम्य अंतर्मुहूर्त **अर्थात् २ क्षुद्र भव का काल।**

१२. **क्षीण मोह – चार क्षुद्र भव का काल।** जघन्य–उत्कृष्ट भेद नहीं।

१३. **सयोगकेवली –** जघन्यकाल **अंतर्मुहूर्त।**
उत्कृष्ट काल – गर्भकाल सहित आठ वर्ष तथा आठ अंतर्मुहूर्त कम एक पूर्व कोटी।

१४. **अयोग केवली –** पाँच ह्रस्व स्वरों (अ, इ, उ, ऋ, लृ) का उच्चारण काल मात्र।

जहाँ जघन्य तथा उत्कृष्ट काल बताया है – उनके बीच के यथासंभव होनेवाले काल के भेदों को मध्यम काल समझ सकते हैं।

●

गुणस्थानों की अपेक्षा जीवों का क्षेत्र, स्पर्शन और काल का प्रमाण

(पु. ४ प्रस्ता. पृ. २९)

गुणस्थान	क्षेत्र	स्पर्शन		काल		
				नानाजीवों की अपेक्षा	एकजीव की अपेक्षा	
		वर्तमानकालिक	अतीत अनागतकालिक		जघन्यकाल	उत्कृष्टकाल
१. मिथ्यादृष्टि	सर्वलोक	सर्वलोक	सर्वलोक	सर्वकाल	(सा.सां.मि.) अन्तर्मुहूर्त	देशोनअर्धपुद्गलपरिवर्तन
२. सासादनसम्यग्दृष्टि	लोक का असंख्यातवां भाग	लोक का असंख्यातवां भाग	देशोन $\frac{८}{१४}$ और $\frac{१२}{१४}$ राजु	जघन्य एकसमय उत्कृष्ट पल्यो, असं. भाग	एक समय	छह आवली
३. सम्यग्मिथ्यादृष्टि	,,	,,	,, $\frac{८}{१४}$ राजू ,,	अन्तमुर्हूतं ,,	अन्तमुर्हूतं	अन्तमुर्हूतं
४. असंयतसम्यग्दृष्टि	,,	,,	,, ,, ,,	सर्वकाल	,,	साधिक तेतीस सागरोपम
५. संयतासंयत	,,	,,	,, $\frac{६}{१४}$,,	,,	,,	देशोन पूर्वकोटी व र्ष
६. प्रमत्तसंयत	,,	,,	लोक का असंख्यातवां भाग	,,	एकसमय	अन्तर्मुहूर्त
७. अप्रमत्तसंयत	,,	,,	,,	,,	,,	,,
८. अपूर्वकरण	,,	,,	,,	जघन्य उत्कृष्ट		,,
९. अनिवृत्तिकरण	,,	,,	,,	उप. एकसमय अन्तर्मुहूर्त	एकसमय	,,
१०. सूक्ष्मसाम्पराय	,,	,,	,,	क्षपक. अन्तमुर्हूत ,,	अन्तर्मुहूर्त	,,
११. उपशान्तमोह	,,	,,	,,	उप.. एकसमय ,,	एकसमय	,,
१२. क्षीणमोह	,,	,,	,,	क्षपक अन्तमुहूर्त ,,	अन्तर्मुहूर्त	,,
१३. सयोगिकेवली	लोक का असंख्यातवा भाग ,, का असंख्यात बहु'' सर्वलोक	लोक का असंख्यातवा भाग ,, का असंख्यात बहु'' सर्वलोक	लोक का असंख्यातवा भाग ,, का असंख्यात बहु'' सर्वलोक	उप. एकसमय ,, क्षपक अन्तमुहूर्त ,, एकसमय ,, अन्तर्मुहूर्त ,, सर्वकाल	एकसमय अन्तर्मुहूर्त एकसमय अन्तर्मुहूर्त ,,	,, ,, ,, ,, ,, ,, देशोन पूर्वकोटी वर्ष
१४. अयोगिकेवली	लोक का असंख्यातवां भाग	लोक का असंख्यातवां भाग	लोक का असंख्यातवां भाग	अन्तर्मुहूर्त अन्तर्मुहूर्त	,,	अन्तर्मुहूर्त